# ♦ तृतीय अध्याय ♦

# प्रबन्धन विविध आयाम

## विषयावतरण

---

- धार्मिक प्रबन्धन
- राजनीतिक प्रबन्धन
  - राष्ट्र प्रबन्धन
  - नीति प्रबन्धन
  - राष्ट्रीयता प्रबन्धन
  - राष्ट्र एवं विश्व प्रबन्धन
- पर्यावरण प्रबन्धन
  - जल प्रबन्धन
  - वन प्रबन्धन

---

# ♦ तृतीय अध्याय ♦

# प्रबन्धन विविध आयाम

## धार्मिक प्रबन्धन

वैदिक धार्मिक प्रबन्धन ऐसा क्षेत्र है जिसके द्वारा प्रदत्त सुसंस्कारों की ख्याति सम्पूर्ण विश्व में परिव्याप्त है। धार्मिक प्रबन्धन को समझने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि पहले हम धर्म शब्द का अर्थ एवम् उसकी व्याख्या को समझें। धर्म शब्द अपने आप में अत्यन्त गूढ़ अर्थ को संजोये हुए है। वैदिक धार्मिक प्रबन्धन के अनुसार धर्म मात्र किसी सम्प्रदाय अथवा जाति विशेष के नियमों व संस्कारों का नाम ही नहीं अपितु धर्म मनुष्य जीवन का वह क्षेत्र है जो उसे स्वकर्तव्य का ज्ञान प्रदान करे, प्रेम, दया, दानशीलता, कर्त्तव्याकर्त्तव्य विषयक अवधारणा का ज्ञान प्रदान करे। सर्वाधिक महत्वपूर्ण यह है कि धर्म मनुष्य को मोक्ष प्राप्ति का मार्ग प्रदान करे–

**धरति लोकान् घ्रियते पुण्यामभिः इति वा धर्मः**

धर्म मनुष्य मात्र को उसके कर्त्तव्यों, अधिकारों एवं जीवन मूल्यों का ज्ञान प्रदान करता है। मनुष्य जीवन की सार्थकता उसके द्वारा अपने सम्पूर्ण जीवनकाल में संपादित कार्यों एवम् आदर्शों द्वारा निर्धारित होती है। वैदिक वाङ्मय में गणपति को सर्वश्रेष्ठ प्रबन्धक के रूप में वर्णित किया गया है। उनका आव्हान करते हुए ऋषि कहते हैं –

**ॐ गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपश्रवस्तमम्।**
**जेष्ठराजं ब्रह्माणां ब्रह्मणस्पत आ नः श्रृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्।।**[55]

---

[55] ऋग्वेद 2.23.1

अर्थात् वसु, इन्द्र, रुद्र, आदित्य आदि गण देवी के स्वामी ऋषि रुप कवियों में वन्दनीय, दिव्य अन्न सम्पत्ति के अधिपति समस्त देवों में वन्दनीय, समस्त देवों में अग्रगण्य तथा मन्त्रसिद्धि के प्रदाता, हे गणपति! यज्ञ, जप तथा दान आदि अनुष्ठानों के माध्यम से हमें आपका आव्हान करते हैं। आप हमें अभय वर प्रदान करें।

विश्व की सर्वाधिक प्राचीन संस्कृति के रुप में स्वीकार्य शाश्वत वैदिक संस्कृति अपने धार्मिक आदर्शों एवं उनके द्वारा प्रदत्त शिक्षाओं को लेकर इक्कीसवीं सदी में भी उतने ही ज्वलन्त ज्ञान के भण्डार के रुप में स्वीकार्य है। भारतीय संस्कृति के आद्य ग्रन्थ वेद ही विश्व की समस्त संस्कृतियों के मूल माने गए हैं –

**वेदोऽखिलोधर्म मूलम्**[56]

अर्थात् सभी धर्मों एवम् संस्कृतियों का उद्गम स्थल वैदिक वाङ्मय ही है। वैदिक धर्म व संस्कृति का मूल उद्देश्य समस्त संसार में शान्ति स्थापना, सम्पूर्ण मानव जाति में एकात्म का भाव जागृत करना तथा आत्म नियन्त्रण व स्वकर्त्तव्य की भावना जागृत करना ही है। वर्तमान समय में मानव जीवन से लुप्त होते जीवन मूल्यों एवम् नैतिक संस्कारों के पुनर्मूल्यांकन की महती आवश्यकता है। वैदिक वाङ्मय द्वारा प्रदत्त संगठन शक्ति की अवधारणा द्वारा ही सम्पूर्ण मानव जाति का सांगोपांग विकास संभव है। शाश्वत नैतिक आदर्श ही वर्तमान अनैतिकता, क्षेत्रवाद, आतंकवाद, भ्रष्टाचार जैसी अनेक समस्याओं से उत्थान के साथ–साथ विश्व शान्ति व राष्ट्रीय एकता एवम् आत्मज्ञान की दिव्य चेतना जागृत कर सकते हैं।

मानव जीवन में मनुष्य को जिन मूल्यों को धारण करने की आवश्यकता है, वही धर्म है। धर्म शब्द का अर्थ मात्र किसी सम्प्रदाय विशेष की व्याख्या नहीं अपितु धर्म स्वयमेव एक अनुष्ठान है जिससे दिव्य चेतना का प्रस्फुरण एवम् आत्मा का शुद्धिकरण होता है। धर्माचरण द्वारा ही मनुष्य

---

[56] मनु. 2.6

जीवन के सद्उद्देश्यों व आदर्शों को चरितार्थ कर पाता है। धर्म रुपी अनुष्ठान, सत्संकल्पों एवम् सार्वभौमिक चेतना के विकास का द्योतक है–

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः।
देवो नो यथा सद्मिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे।।
देवानां भद्रा समुमतिऋजूयतां देवानां रातिरभि नो नि वर्तताम्।
देवानां सख्यमुप सेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे।।
तान् पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्त्रिधम्।
अर्यमणं वरुणं सोमश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत्।।
तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत् पिता द्यौः।
तद् ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम्।।
तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम्।
पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुदब्धः स्वस्तये।।
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।।
पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः।
अग्निजिव्हा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह।।
भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः।।
शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः।।
अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदिनिर्माता स पिता स पुत्रः।

विश्वै देवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्।।[57]

विश्व शांति, प्रगति तथा एकात्म भाव का संदेश उपर्युक्त मन्त्रों में प्राप्त है। कल्याणकारक, न दबाने वाले, पराभूत न होने वाले, उच्चता को पहुँचाने वाले शुभकर्म चारों ओर से हमारे निकट आवें। प्रगति, उत्थान को न रोकने वाले, प्रतिदिन सुरक्षा करने वाले देव हमारा सदा संवर्धन करने वाले हों। सरल मार्ग से जाने वाले देवों की कल्याणकारक सद्बुद्धि तथा देवों की उदारता हमें सदा प्राप्त होती रहे। हम देवों की मित्रता प्राप्त करें, देव हमें दीर्घायु प्रदान करें। उन देवों को प्राचीन मन्त्रों से हम बुलाते हैं। भग, मित्र, अदिति, दक्ष, विश्वासयोग्य मरुतों के गण, अर्यमा, वरुण, सोम, अश्विनिकुमार, भाग्ययुक्त सरस्वती हमें सुख दे। वायु उस सुखदायी औषध को हमारे पास बहाये। माता भूमि तथा पिता द्युः लोक उस औषध को हमें दें। सोम रस प्रदान करने वाले औषध तथा सुखकारी पारस (पत्थर) हमें दे। हे बुद्धिमान अश्विदेवों! तुम यह हमारा भाषण सुनों। स्थावर और जंगम के अधिपति बुद्धि को प्रेरणा देने वाले उस ईश्वर को हम अपनी सुरक्षा के लिये बुलाते हैं। इससे वह पोषणकर्ता देव हमारे ऐश्वर्य की समृद्धि करने वाला तथा सुरक्षा करने वाला हो, अपराजित देव हमारा कल्याण करें, सर्वज्ञ पूषा हमारा कल्याण करें। जिसका रथचक्र अप्रतिहत चलता है, वह तार्क्ष्य हमारा कल्याण करें, बृहस्पति हमारा कल्याण करें। धब्बों वाले घोड़ों से युक्त, भूमि को माता मानने वाले, शुभकर्म करने के लिये जाने वाले, युद्ध में पहुँचने वाले, अग्नि के समान तेजस्वी जिह्वा वाले, मननशील, सूर्य के समान तेजस्वी मरुतरूपी सब देव हैं, हमारे यहाँ सुरक्षा की शक्ति के साथ आयें। हे देवों! कानों से हम कल्याणकारी भाषण सुनें। हे यज्ञ के योग्य देवों! आँखों से हम कल्याणकारक वस्तु देखें। स्थिर सुदृढ़ अवयवों से वर्षों तक ही हमारे आयुष्य की मर्यादा है, उसमें भी हमारी आयु को तुमने ही (वृद्धावस्था तक) बढ़ाया है तथा आज जो पुत्र हैं, वे ही आगे पिता होने वाले हैं, इसीलिये हमारी आयु बीच में न टूट जाये ऐसा करो। अदिति ही द्युलोक है, अन्तरिक्ष, माता–पिता, पुत्र, सब देव

---

[57] ऋग्वेद्. 1.89.1–10

पंचजन (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व निषाद) जो बन चुका है और जो बनने वाला है, वह सब अदिति ही है। (अर्थात् शाश्वत सत्य है, जिसके तत्वदर्शन से परम कल्याण होता है)।

मनुष्य के व्यष्टिगत अथवा समष्टिगत जीवन प्रबन्धन में धर्म ही मनुष्य के अन्र्तमन में उदारता, दया, सहिष्णुता, दानशीलता व प्रेम आदि की सद्भावनाओं का विकास करता है। धर्माचरण द्वारा ही सम्पूर्ण मानव समाज में परस्पर विश्वास, शान्ति एवम् व्यवस्थित सामाजिक प्रबन्धन संभव है।

मनुष्य की असीम अभिलाषाऐं ही मनुष्य को नैतिक पतन की ओर धकेल रही हैं और आत्म संयम द्वारा ही इस पतनोन्मुखी संस्कृति का उद्धार संभव है। धर्माचरण एक ऐसी पद्धति है जिससे मनुष्य बिना किसी बाहरी दबाव के आत्मानुशासन रुपी चेतना अपने व्यवहार में जागृत कर सकता है।

वैदिक वाङ्मय का सर्वप्रथम लक्ष्य आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान करना ही है। आत्मचेतना रुपी ज्ञान की प्राप्ति के लिये विषयभोग से परे आत्मानुशासन की आवश्यकता होती है। ज्ञान प्राप्ति के द्वारा ही मनुष्य ब्रह्मत्व को प्राप्त कर सकता है और यही मोक्ष प्राप्ति का एकमात्र साधन है।

वैदिक धार्मिक विधानों का मूल उद्देश्य कर्मकाण्ड नहीं अपितु 'भगवत्' प्राप्ति होता है। आत्म चेतना द्वारा ब्रह्मसत्ता में एकात्म स्थापित होने पर कोई कार्य दुष्कर नहीं होता अपितु मनुष्य के सत्कार्यों के संपादन में स्वयं ईश्वर उसकी सहायता करते हैं। इस भावना को पुष्ट करने के उद्देश्य से भारतीय धार्मिक प्रबन्धन में दान का विधान हैं सुपात्र को दिया गया दान ईश्वर को प्रसन्न करता है। ऋग्वेद के दशम मण्डल का 107वाँ सूक्त 'दक्षिणा सूक्त' है तथा 117वाँ दान सूक्त है। दोनों ही सूक्तों में उत्तमदाता, दान, देय, दान का पात्र एवम् दान का फल आदि का विवरण है। वर्तमान भौतिकवादी युग में प्रथम तो मनुष्य इतना स्वार्थी हो गया है कि दानशीलता की भावना प्रायः समाप्त हो गई है अथवा धर्म को गलत रुप से व्याख्या कर कुपात्र व्यक्ति स्वार्थी बनकर स्वयं को दान का

पात्र बता कर कई भोले भाले व्यक्तियों को ठगते हैं। दानशीलता के दुरुपयोग के वर्तमान युग में वैदिक वाङ्मय में वर्णित सूक्त अत्यन्त उपयोगी हैं, उदाहरणार्थ –

**दक्षिणावान् प्रथमो हत एधि दक्षिणावान् ग्रामणीरग्रमेति।**
**तमेव मन्ये नृपतिं जनानां य प्रथमो दक्षिणामविवाया।।**

अर्थात् दाता को सर्वप्रथम बुलाया जाता है। वह ग्रामाध्यक्ष होता है और सबके आगे–आगे चलता है, जो सबसे पहले दक्षिणा देता है, उसे मैं सबका राजा (आंगिरस दिव्य ऋषि) मानता हूँ।

सम्पूर्ण श्रुति साहित्य में कुछ दे सकने की भावना पर बल दिया गया है। धार्मिक विधानों में प्रकृति को अत्यधिक महत्व दिया गया है, मनुष्य जीवन में भौतिकता व स्वार्थपरकता के कारण हम प्राकृतिक विधानों की अनदेखी करते हैं किन्तु जब ईश्वरीय संविधान में मनुष्य की पूर्ण श्रद्धा उत्पन्न हो जायेगी तब मनुष्य द्वारा संपादित सभी कार्य सफलता को प्राप्त कर सकेंगे। मनुष्य के आत्मज्ञान रुपी चेतना पर भौतिकता रुपी आवरण छाया हुआ है और यह अज्ञान वैदिक धार्मिक संस्कारों को अनावृत करने पर ही दैदिप्यमान हो सकता है–

**स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।**
**पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि।।**[58]

अर्थात् हम अविनाशी एवम् कल्याणप्रद मार्ग पर चलें जिस पर सूर्य और चन्द्रमा चिरकाल से निःसंदेह बिना किसी का आश्रय लिये राक्षसादि दुष्टों से रहित पथ का अनुसरण कर अभिमत मार्ग पर चल रहे हैं, उसी प्रकार हम भी परस्पर स्नेह के साथ शास्त्रोपदिष्ट अभिमत मार्ग पर चलें। प्रकृति रुपी समस्त ईश्वरीय शक्तियाँ मनुष्य मात्र के भीतर पंचमहाभूतों के रुप में छिपी हुई हैं तथा सदैव मनुष्य के साथ होती हैं–

**''ममैवांशो जीव लोके''**[59]

---

[58] ऋग्वेद 5.51.15
[59] श्रीमद्भगवत्गीता, 15.7

श्रीमद्भगवत गीता में भी स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि प्रत्येक जीव मेरा ही अंश है।

वर्तमान वैज्ञानिक शोधों के उपरान्त यह निष्कर्ष निकाला जा चुका है कि प्रत्येक मनुष्य के अर्न्तमन में ईश्वर का निवास होता है। सनातन भारतीय संस्कृति का यह विश्वास है कि इस ब्रह्माण्ड की समस्त जड़ व चेतन वस्तुओं में 'ब्रह्म' का निवास होता हैं

अति प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक इतिहास आज भी उस शीर्ष स्थान पर सुशोभित है जहां से वह सम्पूर्ण विश्व में निष्प्राण होती मानवता के भीतर नवीन प्राणों का संचार करने में समर्थ है। आवश्यकता है तो बस यही कि सनातन वैदिक धार्मिक संस्कृति की प्रतिष्ठित शिक्षा व वेद विद्या के पुनः गहन अध्ययन की।

प्राचीन धार्मिक प्रबन्धन प्राणिमात्र से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पर्यन्त शान्ति स्थापना तथा सभी प्राणियों में आपसी सद्भाव का संदेश ही प्रसारित करता आया है। उत्तर वैदिक काल से आज तक भारतवर्ष को अनेक विपत्तियों का सामना करना पड़ा किन्तु राष्ट्र की मूलभूत एकता तथा 'सर्वधर्म समभाव' की सद्भावना के कारण आज भी भारतीय संस्कृति ब्रह्मज्ञान के आलोक से दैदिप्यमान हो रही है।

परम ज्ञानी मन्त्र दृष्टा, ऋषियों ने वैदिक वाङ्मय द्वारा त्याग का संदेश स्थापित किया है। वैदिक दृष्टि सभी प्राणियों में एक ही आत्मा के दर्शन करती है। सर्वत्र व्याप्त ईश्वर के दर्शनों के लिये ही हमें यह मानव जीवन प्राप्त हुआ है। यही वेदोक्त उपदेश हैं तथा 'धर्म' उस ही ईश्वर की प्राप्ति का मार्ग है।

**वेदः स्मृति सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।**
**एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम्।।**

इस प्रकार वेद स्मृति सदाचार तथा सत्याचरण (जो आत्मा को प्रिय हो) सत्कर्मों की शिक्षा देने वाले वेद में छिपे गूढ़ रहस्यों को लेकर, उनके द्वारा प्रदत्त ज्ञान विज्ञान को लेकर आज तक अनवरत शोधकार्य चल रहा है। यह तथ्य वैज्ञानिकों के लिये शोध का विषय बना हुआ है कि हजारों

हजार वर्ष पूर्व के ऋषियों का चिन्तन किस प्रकार इतना विस्तृत हो सकता है, कैसे अपौरुषेय वेदों का अस्तित्व आज तक यथावत् स्थापित है।

प्राचीन काल से अद्य पर्यन्त शोधों के आधार पर निम्न चार वेदों को स्वीकार किया गया है तथा इनका विभाजन इस प्रकार है –

**तालिका**[60]

| वेद | पूर्व में उपलब्ध शाखाऐं | वर्तमान मे उपलब्ध शाखाऐं | मन्त्र संख्या |
|---|---|---|---|
| ऋग्वेद | 21 | 2 | 10552 |
| यजुर्वेद | 101 | 6 | 1975 |
| सामवेद | 1000 | 3 | 1875 |
| अथर्ववेद | 9 | 2 | 5987 |

वैदिक वाङ्मय में मुख्यतः प्रकृति को देवत्व रुप में स्थापित किया गया है यथा अग्नि, वायु, इन्द्र, वरुण, सोम, पृथ्वी, विष्णु, उषा, सूर्य, ब्रहस्पति, अन्न, वनस्पति, अरण्य, हिरण्यगर्भ आदि। वेदों में यज्ञादि धार्मिक अनुष्ठानों का प्रबन्धन भी मनुष्य के हित को तथा पर्यावरण संरक्षण को केन्द्र में रखकर ही किया गया है।

सनातन भारतीय वैदिक धर्म का मुख्य उद्देश्य मनुष्य को भटकाव अथवा दुविधा के जीवन से परे व्यवस्थित नीति युक्त उन्मुक्त किन्तु आत्मनियंत्रित जीवन जीने की कला का ज्ञान करवाना है। उन्मुक्तता अथवा स्वतन्त्रता से आशय निरंकुश वासनापूर्ण भौतिकवादी जीवन जीने से नहीं अपितु स्वतन्त्रता सुविचारों की होनी चाहिये, स्वतन्त्रता ईश्वर प्राप्ति के उद्देश्य से धर्माचरण करने की होनी चाहिये तथा मोक्ष प्राप्त करने की अभिलाषा रखने की होनी चाहिये।

---

[60] स्रोत– साहित्य विश्लेषण, जर्नल्स एवम् संङ्गणक के आधार पर संकलित एवं विकसित

धार्मिक प्रबन्धन सदैव मनुष्य को आत्मोन्नति की स्वतन्त्रता प्रदान करता है। धार्मिक व्यवस्था अर्थात् चारों पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) तथा चारों आश्रम (ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम तथा सन्यास आश्रम) सभी मनुष्य को स्वच्छ सामाजिक वातावरण में आत्मा की उन्नति का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

वैदिक वाङ्मय में न्याय, नीति, नियम, अनुशासन तथा व्यवस्था संबधी अनेक चर्चाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। वेद तथा वेदोपरान्त सम्पूर्ण साहित्य सर्वत्र शब्दों तथा विचारों के वैभिन्न के उपरान्त भी समस्त भारतीय वाङ्मय में मनुष्य जीवन की सार्थकता धर्मयुक्त जीवन यापन तथा मरणोपरान्त मोक्षप्राप्ति की बात बिना किसी विरोधाभास के एक मत से स्वीकार की गई है।

प्राचीनकाल से अद्यपर्यन्त हिन्दू संस्कृति में सामाजिक प्रबन्धन, व्यक्तिगत प्रबन्धन अथवा समष्टिगत प्रबन्धन सर्वत्र धर्म को सर्वप्रथम पुरुषार्थ के रुप में वर्णित किया गया है। मानव जीवन का कोई भी पक्ष हो यथा जन्म, मृत्यु, खानपान, व्यवसाय, शिक्षा, विवाह आदि धार्मिक प्रबन्धन द्वारा मनुष्य को पर्याप्त दिशा–निर्देश दिये गये हैं। भारतीय संस्कृति में धर्म अत्यन्त व्यापक अर्थ में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से संयुक्त है। धर्म शब्द का गूढ़ अर्थ मनुष्य को उसके कर्तव्यों, अनुशासन, विशेषाधिकारों से अवगत कराने के लिये वेदोक्त मार्ग है। मनुष्य के आन्तरिक शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने का साधन धर्म है, परमपिता के प्रति कृतज्ञता का भाव समर्पित करने का मार्ग ही धर्म है –

**यतोऽभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः**

अर्थात् जिससे लौकिक उन्नति व मोक्ष की प्राप्ति हो, वही धर्म है। पुरुषार्थ चतुष्टय अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि से ही मनुष्य का जीवन सफलता को प्राप्त करता है। भारतीय चिन्तन परम्परा में श्रुति व स्मृति का अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है। महर्षि मनु के अनुसार –

**श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।**
**ते सर्वार्थेष्वमीमांसे ताभ्यां धर्मो हि लक्षणं।।**[61]

---

[61] मनु. स्मृ. 2.10

अर्थात् श्रुति से वेद तथा स्मृति से धर्मशास्त्र ज्ञेय है। वह मनुष्य यश तथा कीर्ति का पात्र होता है जो वेदों तथा स्मृतियों में कहे गए धर्म का पालन करता है। वेद एवम् वेदोत्तर साहित्य के अध्ययन के अभाव में मनुष्य कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य, सत्य–असत्य, ग्राह्य–अग्राह्य, आचार–अनाचार, धर्म–अधर्म, पाप–पुण्य आदि के मध्य विभाजन रेखा का उचित ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता है–

**धृति क्षमा दमो स्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रह।**
**धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।।**

प्रतिकूल परिस्थिति में धैर्य रखना, अपराधी को क्षमा करना, आन्तरिक व बाह्य शुद्धता, सुविचारों की ओर बुद्धि को प्रेरित करना, सम्यक ज्ञानार्जन, सत्यव्रत का पालन करना, यह उत्तम कार्य है तथा मन को अनुचित (बुरे) कर्मों की ओर प्रवृत्त करना, चोरी करना, इन्द्रीय लोलुपता में स्वयं को लिप्त रखना, क्रोध करना, यह सभी अकर्म है।

इन्हीं नियमों के पालन को धर्म के लक्षण रुप में निरुपित किया गया है। सम्पूर्ण मानव जाति को वेदोक्त सत्य मार्ग का ज्ञान देने हेतु धर्मशास्त्र का विधान है जिसका विभाजन इस प्रकार विद्वानों द्वारा मान्य है –

**तालिका**

**धर्मशास्त्र का विवरण** [62]

| | **ऋग्वेद** | **यजुर्वेद** | **सामवेद** | **अथर्ववेद** |
|---|---|---|---|---|
| श्रोत | आश्वलायन<br>सांख्यायन | कात्यायन<br>बौधायन (धा)<br>आपस्तम्ब<br>हिरण्यकेशी<br>विरवानस<br>भारद्वाज<br>मानव<br>वराह | अग्रह्य<br>लात्यायन<br>द्रहियायन<br>जैमिनीय | वैताना |
| ग्रह्य | आश्वलायन<br>शाख्यायन<br>कौशितकी | पारस्कर<br>बौधायन<br>आपस्तम्ब<br>हिरण्याकेशी | गोबल<br>द्रह्यायन<br>खदीरा<br>जैमिनीय | कौशिक |

---

[62] स्रोत– साहित्य विश्लेषण, जर्नल्स एवम् संङ्गणक के आधार पर संकलित एवं विकसित

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| | | भारद्वाज<br>मानव<br>काथक | | |
| धर्मसूत्र | वशिष्ठ<br>विष्णु | हरित<br>सांख्य<br>बौधायन<br>आपस्तम्ब<br>हिरण्यकेशी | गौतम | |
| शुल्वसूत्र | | कात्यायन<br>बौधायन<br>आपस्तम्ब<br>मानव | | |

वैदिक मन्त्र दृष्टा वशिष्ठजी का दिव्य चरित्र व कृतित्व सभी को सन्मार्ग का अनुसरण करने की प्रेरणा देता है। धर्म को परिभाषित करते हुए महर्षि वशिष्ठ कहते हैं कि श्रुति तथा धर्मशास्त्र में जो विहित आचरण वर्णित है वही सत्य धर्म है तथा धर्माचरण की महिमा वर्णित करते हुए वे कहते हैं –

**धर्मं चरत माऽधर्म सत्यं वदत नानृतम।**
**दीर्घं पश्यत् माह्रस्वं परं पश्यत् माऽपरम्।।**[63]

अर्थात् धर्म का आचरण ही करो, सदा सत्याचरण करो, असत्य भाषण नहीं, उदारमना बनों, विस्तृत विचारधारा के स्वामी बनों तथा विश्वबंधुत्व की भावना के साथ सम्पूर्ण चराचर जगत् को समान भाव से देखो।

सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में धर्म के विभिन्न रुपों को संकलित किया गया है किन्तु सभी का मूल उद्देश्य मनुष्य एवम् मनुष्यता की रक्षा करना ही है–

**''अहिंसा परमोधर्मः''**

अहिंसा को मनुष्य का सर्वोपरि धर्म कहा गया है। प्राणि जगत में सभी को जीने का अधिकार प्राप्त है, स्वार्थ सिद्धि के लिये किसी भी जीव की हिंसा करना महापाप माना गया हैं प्राणिमात्र पर

---

[63] वशिष्ठ 30.1

दया करना चाहिये। प्रथम पुरुषार्थ अर्थात् 'धर्म' जीवन में धर्म का प्रबन्धन करने पर ही द्वितीय पुरुषार्थ अर्थात् 'अर्थ' स्वतः ही प्राप्त हो जाता है, अर्थ प्राप्ति द्वारा तृतीय पुरुषार्थ 'काम' अर्थात् मनुष्य की समस्त कामनाऐं, अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं और अन्ततः तृप्त मनुष्य ही मोक्ष को प्राप्त करता है। अतः हम यह कह सकते हैं कि पुरुषार्थ चतुष्टय में सर्वप्रथम धर्म को स्थान इसीलिये दिया गया है क्योंकि धर्म ही मनुष्य को मोक्ष प्राप्ति के मार्ग का ज्ञान कराता है।

वैदिक वाङ्मय, वैदिक धर्म, वैदिक शिक्षाएँ सनातन हैं अर्थात् अविनाशी हैं। आदि अन्त से रहित सत्य को शाश्वत कहा गया है और यही सनातन धर्म की व्याख्या है। वैदिक धर्म वेदों की रचना के हजारों वर्ष पर्यन्त भी अक्षुण्ण बना हुआ है, वर्तमान युग में भी भारतवासियों ने अपने धार्मिक संस्कारों को विस्मृत नहीं किया वेदों में वर्णित षोडष संस्कार यथा विवाह संस्कार, उपनयन संस्कार, अन्तिम संस्कार, आदि में वैदिक मन्त्रों का ही उच्चारण किया जाता हैं मनुष्य की अहर्निक दिनचर्या से सम्बद्ध वैदिक धार्मिक दिशा–निर्देश प्राप्त हैं, प्रातः जागरण के पश्चात् स्नानादि दैनंदिन कार्यों से निवृत्त हो सूर्य नमस्कार, गुरुजनों के आशीर्वाद प्राप्त करने से लेकर संध्यावन्दन, भोजन विधि सभी स्थानों पर धर्म संस्कारों के दर्शन प्राप्त होते हैं।

भारतीय धार्मिक प्रबन्धन ऐसा धर्म है जो मोक्ष की अवधारणा प्रदान करता है। सत्य, अहिंसा, दया, दानशीलता, क्षमा, जप, तप, नियम पालन आदि सभी हिन्दू धर्म की प्रमुख शिक्षाएँ हैं। वैदिक धर्म इतना प्राचीन है कि जब विश्व में अन्य कोई धर्म अस्तित्व में नहीं था, उस समय वैदिक वाङ्मय ने पूर्ण परिपक्व सिद्धांतों के साथ अपने अस्तित्व को धारण कर लिया था। इस अपौरुषेय वेद के दर्शन मन्त्र द्रष्टा ऋषियों ने हजारों हजार वर्ष पूर्व ही कर लिये थे। भविष्य की आवश्यकताओं, समस्याओं तथा उनके निराकरण के उपायों से भी वे भलीभाँति परिचित थे। उन्होंने धर्म के रुप में मात्र कट्टरपंथिता का मार्ग प्रदर्शन नहीं किया अपितु स्निग्ध किन्तु मानव जीवन में प्रतिक्षण उपयोगी

दिशा–निर्देशों का कोष जन–जन के समक्ष प्रस्तुत किया है। इन निर्देशों को न मानने से समाज की ही नहीं अपितु व्यक्ति के व्यक्तित्व की भी हानि होती है–

**अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः।**
**नित्यं सन्निहितो मृत्यु कर्त्तव्यो धर्म संग्रहः।।**

अर्थात् इस संसार में सभी कुछ नश्वर है, यह शरीर नश्वर है, वैभव, धन सम्पदा भी विनाशवान है किन्तु मृत्यु निश्चित है। अतः मनुष्य का परम कर्त्तव्य है कि वह धर्म संग्रह करे, अपने जन्म को सार्थक करने के लिये स्वयं को धर्म की ओर प्रेरित करे। सम्पूर्ण जगत् ब्रह्ममय है, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के कण–कण में ब्रह्म व्याप्त है, वही हमें धर्म करने की प्रेरणा प्रदान करता है। मानवता जब धर्म मार्ग से भ्रष्ट होती है तब उसे पुनः शाश्वत धार्मिक मार्ग का दर्शन कराने के लिये ईश्वर स्वयं ही संसार में अवतरित होते हैं–

**यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।**
**अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।**
**परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।**
**धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।**[64]

गीता में भी भगवान श्रीकृष्ण ने यही कहा है कि जब–जब धर्म की हानि होती है, अधर्म की वृद्धि होती है, तब तब मानवता की रक्षा के लिये मैं अपने रुप को धारण करता हूँ। मैं साधु पुरुषों (शुद्ध चित्त) का उद्धार करने तथा दूषित कर्म अथवा अधर्म का आचरण करने वालों का नाश करने के लिये तथा धर्म की स्थापना करने के लिये युग–युग में प्रकट होता हूँ।

भारतीय चिन्तन व धार्मिक प्रबन्धन यही कहता है कि सर्वशक्तिमान परमात्मा अविनाशी है। वे ही धर्म की स्थापना करते हैं तथा धर्म के रक्षण के लिये ही उनका समय–समय पर प्राकट्य होता

---

[64] श्रीमद्भगवतगीता 4.7–8

है। निर्विकार, निर्दोष, निर्लिप्त मनुष्य उन्हें सरलता से प्राप्त कर लेते हैं। उपनिषदों में धर्मरुपी मार्ग को अपनाते हुए ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि हमें असत्य से सत्य की ओर अन्धकार से प्रकाश की ओर तथा मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जाएँ –

**असतो मा सद्गमय।**
**तमसो मा ज्योतिर्गमय।**
**मृत्योर्मा अमृतं गमय।**[65]

वेदों में आत्मा को ईश्वर का ही अंश निरुपित किया गया है तथा आत्मा को ईश्वर भक्ति में लीन करने वाला मनुष्य ही परमपद को प्राप्त होता है यथा –

**युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः।**
**शान्तिं निर्वाणपरमां मत्सं स्थामधि गच्छति।।**[66]

अर्थात् आत्मा को निरन्तर परमेश्वर के स्वरुप में रत करता हुआ स्वाधीन मन वाला योगी मेरे में स्थिर रुप परमानन्द पराकाष्ठा वाली शान्ति को प्राप्त होता है। भारतीय धार्मिक साहित्य आत्मवान बनने का उपदेश देते हैं। शरीर, इन्द्रियां, अहंकार भाव, मन, दुर्बुद्धि, लालसा सभी भौतिक सुख प्राप्ति के साधन हैं किन्तु जो शाश्वत है, अनंत है, नित्य है, परब्रह्म स्वरुप है तथा चैतन्य स्वरुप को प्रकाशित करता है, वह तत्व आत्मा ही है–

**''अयम् आत्मा ब्रह्म''**[67]

अर्थात् यह आत्मा ही ब्रह्मा है। ब्रह्म स्वरुप होने, ब्रह्मस्वरूप में प्रस्फुटित होने तथा अन्ततोगत्वा ब्रह्म में ही लीन हो जाने से इसे ब्रह्म तुल्य स्वीकारा गया हैं–

**नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।**
**न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।**[68]

---

[65] बृहदारण्यक उपनिषद्
[66] श्रीमद्भगवतगीता अ.6.5
[67] बृह. उप. ़ 2.5.19

अर्थात् आत्मा वह तत्व है जिसे कोई शास्त्र नहीं भेद सकता, कोई अग्नि नहीं जला सकती, कोई दुख उसे तपा नहीं सकता तथा कोई वायु उसे बहा नहीं सकती। आत्मा निराकार है तथा शरीर रुपी वस्त्र को धारण करती है। आत्मा की शुद्धि के लिये वैदिक वाङ्मय में धर्म मार्ग का अनुसरण करने का विचार प्रकट किया गया है। यही भारतीय धार्मिक प्रबन्धन का मूल उद्‌देश्य है।

भारतीय साहित्य में वर्णित धर्मशास्त्र के अन्तर्गत वर्ण व्यवस्था तथा आश्रम व्यवस्था दोनों ही व्यक्ति को उसके वर्ण तथा आयु के अनुसार कर्म तथा अकर्म (अकर्त्तव्य) का ज्ञान करते हैं। जीवन में श्रेष्ठाचरण, श्रम, पुरुषार्थ, धर्माचरण द्वारा आधुनिक युग में भी मनुष्य अपने जीवन को सुप्रबन्धित, सार्थक व सफल बना सकता है।

आधुनिक युग में धर्म के नाम पर हो रहे आडम्बर प्राचीन भारतीय मेधा का चिन्तन सर्वथा नहीं है। आज मनुष्य ने स्वार्थपूर्वक धर्म को व्यवसाय बनाकर धर्म शब्द की वैदिक अवधारणा को ही परिवर्तित कर दिया है। वर्तमान काल में आधुनिक मानव जीवन मूल्य ही परिवर्तित हो गए हैं। यह सत्य है कि परिवर्तन सृष्टि का नियम है किन्तु अद्यतन हो रहे भौतिकवादी परिवर्तनों के चलते विकास के पथ पर अग्रसर मनुष्य सर्वसुविधाएँ प्राप्त होने पर भी असंतुष्ट एवम् त्रस्त है। वर्तमान मनुष्य को प्राचीन वैदिक धार्मिक दर्शन व प्रबन्धन की अत्यन्त आवश्यकता है जो सम्पूर्ण समाज को सामाजिक, राजनैतिक तथा भौतिक समस्याओं का समाधान दे सके। शान्ति व सुख प्रदान कर सके। भारतीय सांस्कृतिक धर्म की व्याख्या मानव की अनन्त कामनाओं को सीमित कर दार्शनिक दृष्टि को व्यापकता प्रदान करती है। श्रेष्ठ आचरण तथा पुरुषार्थ, मर्यादा, श्रम तथा ईश्वर भक्ति में रत होकर मनुष्य समस्त समस्याओं का समाधान प्राप्त कर सकता है। मात्र भौतिकता को ही सत्य माान‍े वाला अर्वाचीन दर्शन जीवन की पूर्ण उन्नति में सहायक नहीं हो सकता है। कट्टरपंथी, रूढ़ीवादी धर्म तथा आधुनिक भौतिकवादी तथा वैज्ञानिक दर्शन से परे वैदिक धार्मिक चिन्तन मनुष्य

---

[68] श्रीमद्‌भगवत् गीता 2.23

को धर्म के केन्द्र में प्रतिष्ठित कर प्रकृति की आराधना व सम्पूर्ण जड़ व चेतन के प्रति अपनत्व भाव को जागृत करता है।

वैदिक कालीन विज्ञान अत्यधिक परिपक्व तथा परिष्कृत था। तत्कालीन वैज्ञानिकों ने पृथ्वी की उत्पत्ति से लगाकर अनेक गणितीय भौतिक तथा जैविक विज्ञान से सम्बन्धित अनेक रहस्यों को जान लिया था।

प्रसिद्ध लेखक श्री मधुसूदन आनन्द के शब्दों में–'' प्राचीन भारतीय मेधा ने प्राचीन यूनानी दार्शनिक डेमोक्रेट्स की तरह ब्रह्माण्ड के मूल कारण के रूप में परमाणु सिद्धान्त का प्रतिपादन कर ही संतोष नहीं कर लिया बल्कि उन्होंने पदार्थ और उसके गुणों के बीच वस्तुओं और उनकी गति के मध्य सामान्य और विशिष्ट के बीच, कारण और प्रभाव के बीच विश्लेषण कर प्रकृति और समस्त ब्रह्माण्ड का घटनाक्रम समझाया।''[69] वैदिककालीन धार्मिक प्रबन्धन वैज्ञानिक उन्नति के चरमोत्कर्ष पर होते हुए भी सर्वधर्म समभाव की भावना के साथ सार्वभौमिक दृष्टि के साथ–साथ विश्व शान्ति की भावना तथा सांस्कृतिक प्रबन्धन को संजोकर मनुष्य की आत्मिक उन्नति के लिए सदैव प्रयत्नशील रहा और यही मूल्य प्रत्येक युग में विश्व के विकास में आवश्यक है। समस्त वैदिक धार्मिक अवधारणाओं में आत्मा को चैतन्य माना गया है। आत्मा ही मनुष्य को स्वयं के अस्तित्व का बोध कराती है तथा ब्रह्म में एकात्म आत्मा द्वारा ही स्थापित होता है।

श्रीकृष्ण रणभूमि में अर्जुन को समझाते हुए कहते हैं कि धीर पुरुष मृत्यु पर शोक नहीं करते, दुःख और सुख उन्हें व्याकुल नहीं करते क्योंकि–

**न जायते म्रियते वा कदचिन्नायं**

**भूत्वा भविता वा न भूयः**

**अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो**

---

[69] मधुसूदन आनन्द लेखक, नई दुनिया, दिनांक 04/10/2006

**न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।**[70]

यह आत्मा रूपी तत्व किसी काल में भी न तो जन्मता है और न ही मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होने वाला ही है, क्योंकि यह अजन्मा, नित्य सनातन और पुरातन है, शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता।

धर्म की प्रासङ्गिकता मात्र एक व्यक्ति के सफल जीवन के पश्चात् मोक्ष प्राप्ति में नहीं अपितु सम्पूर्ण संसार के कल्याण की परिस्थिति निर्माण में निहित है। विश्व का कोई भी धर्म परस्पर राग, द्वेष, ईर्ष्या, स्वार्थ, क्रोध, अहंकार, लोभ, माया आदि से मनुष्य को दूर रहने की ही शिक्षा देता है।

धर्म शब्द 'धर' क्रियापद से बना है। 'धारयतीति धर्मः' सूक्ष्मतम से दीर्घतम वस्तुओं को जिस प्रकार धरती ने अपने गुरूत्वाकर्षण से अपने शरीर पर बांधे रखा है उसी प्रकार धर्म वह शक्ति है जिसने सत्कर्मों, सद्गुणों को अपनी शक्ति से धारण कर रखा है। विश्व में नैतिकता का आधार धर्म ही है। धर्म एक कर्त्तव्य है, पवित्रता का द्योतक है, एकता की अवधारणा धर्म पर ही आधारित है, धर्म सामाजिक जीवन की नींव को दृढ़ करता है। धर्म हमारे आचरण को नियन्त्रित कर सम्पत्ति, सौन्दर्य, प्रेम, दीर्घायु, निरन्तरता प्रदान करता है।

जिस प्रकार एक चिकित्सक विभिन्न व्यक्तियों को उनकी शारीरिक संरचनाओं एवम् आवश्यकताओं के अनुसार औषधि प्रदान करता है, उसी प्रकार भारतीय वैदिक धर्म भी प्रत्येक व्यक्ति को उसके कर्त्तव्य का बोध करवाता है। किन्तु अहिंसा, सत्य, अस्तेय, स्वच्छता, इन्द्रिय निग्रह, दानशीलता आदि ऐसे कर्त्तव्य हैं जो सभी के लिए समान हैं।

शुक्लयजुर्वेदसंहिता में विभिन्न देवताओं का आह्वान किया गया है तथा सभी से सामाजिक हितों को ध्यान में रखकर विनती की गई है–'

**देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपति भगाय।**

---

[70] श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 2/20

**दिव्यो गन्धर्वः केतपूः कितं नः पुनातु**

**वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु।।**

**तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि**

**धियो या नः प्रचोदयात्।।**

**विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।**

**यदभद्रं तन्न आसुव।।**

**विभक्तारम् हवामहे वसोश्चित्रस्य राघसः**

**सवितारं नृचक्षसम्।।**[71]

अर्थात हे सवितादेव आप अपने तेज द्वारा हमारे कर्म तथा बुद्धि को प्रेरित करें, हमारे विज्ञान को प्रेरित करें, हमारी वाणी को, हमारी स्तुति को आस्वादित करें। हे सविता देव! आप हमारे समस्त दुर्गुणों को दूर करें। शुभ गुणों को हमें प्राप्त करावें। आप समस्त मानव जाति को धन प्रदान करने वाले हैं, हम आपका आह्वान करते हैं।

तत्कालीन यज्ञ व्यवस्था में सभी व्यवसाय, सभी जातियों के लोगों की सहभागिता व योगदान वर्णित है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, सूत, सभाचारी, भील, रथकार, लोहार, मणिकार, धनुषकार, ज्या–निर्माता, रज्जुकार, निषाद आदि विभिन्न व्यवसाईयों का वर्णन प्राप्त है।

धर्मशास्त्र में देश काल परिस्थिति के अनुसार परिवर्तनशील धर्मों का उल्लेख है। विपत्तिकाल एवं तनाव से मुक्ति के लिए आपद–धर्म को अपनाना पड़ता है। वर्तमान प्रबन्धकीय अवधारणा में इस प्रकार के प्रबन्धन को क्राइसेस मेनेजमेन्ट तथा स्ट्रेस मेनेजमेन्ट कहा जाता है किन्तु यह प्रबन्धकीय व्यवस्था भारतीय धार्मिक व सामाजिक प्रबन्धन में वैदिक काल से ही वर्णित है। वेदों में विपत्तिकाल में मनुष्य के व्यवहार व आचरण तथा तनाव से मुक्ति के उपयों का वर्णन किया गया है।

---

[71] शुक्लयजुर्वेद, 30.1–4

धर्म को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया जा सकता है, सामान्य धर्म व विशेष धर्म। सामान्य धर्म प्रत्येक मनुष्य के लिए वर्णित अत्यावश्यक कर्त्तव्य है तथा विशेष धर्म व्यक्ति, देश, काल, परिस्थिति के अनुसार कार्य करता है, जिससे जातिगत नीति, नियम व आदेश भी कार्य करते हैं।

**तालिका**[72]

| **सामान्य धर्म** | **विशेष धर्म** |
|---|---|
| **वैश्विक धर्म** | **व्यक्तिगत धर्म** |
| संतुष्टि | वर्णाश्रम धर्म |
| क्षमा | स्वधर्म |
| आत्मसंयम | युगधर्म |
| अस्तेय | मानवधर्म |
| पवित्रता | पुरूषधर्म |
| इन्द्रिय निग्रह | स्त्रीधर्म |
| स्वविवेक | राजधर्म |
| आध्यात्मिक ज्ञान | प्रजाधर्म |
| सत्यधर्मिता | प्रवृत्तिधर्म |
| क्रोध पर विजय | निवृत्ति धर्म |

उपर्युक्त धार्मिक विभाजन के संदर्भ में पंढरपुर के वारकरी सम्प्रदाय के उपास्य 'विट्ठल' की प्राचीनता 784 युगों से अधिक बताई जाती है। भक्तगण आज भी लाखों मील की यात्रा कर वारकरी आते हैं। सभी भक्तों को कितनी यात्रा करनी है, कब और कहाँ रूकना है, कहाँ भोजन करना है यह सब बाते पीढ़ियों से तय होती है। कोई इसे न तो भूलता है और न ही इनकी अवमानना करता है। नई पीढ़ी भी स्वतः ही इन नियमों को स्वाभाविक रुप से आत्मसात् कर लेती है, यह सम्पूर्ण कार्य इतना अनुशासित होता है कि किसी मनुष्य प्रबन्धक की आवश्यकता ही नहीं होती। सारा आर्थिक

---

[72] स्रोत– साहित्य विश्लेषण, जर्नल्स एवम् संङ्गणक के आधार पर संकलित एवं विकसित

विनिमय यथा वाहन किराया आदि भी पूर्व निर्धारित होता है। व्यवहार पारदर्शी एवम् व्यक्ति की विश्वसनीयता पर निर्भर होता है। 250 से 300 व्यक्तियों के समूह को 'दिंडी– कहा जाता है, जो वर्ष भर परस्पर सम्पर्क में रहते हैं। प्रत्येक यात्री की अभिलाषा यह होती है कि ईश्वर हमें पुनः मानव जन्म प्रदान करें और विठ्ठल भक्ति का लाभ प्रदान करें।

समूहगत निश्च्छल धार्मिक प्रबन्धन का यह सर्वश्रेष्ठ तथा अनूठा उदाहरण है। अपने आराध्य के लिए व्यक्ति मोह, लोभ सभी कुछ त्यागकर परस्पर सेवाभाव, दयाभाव तथा विश्वास के साथ ईश्वर भक्ति के पथ पर प्रस्थान करते हैं। उज्जैन शहर की पंचक्रोशी यात्रा, ओंकारेश्वर की नर्मदा परिक्रमा यात्रा तथा सम्पूर्ण भारत में होने वाले इस प्रकार के निःस्वार्थ धार्मिक आयोजन इस श्रेष्ठ धार्मिक प्रबन्धन का ज्वलन्त उदाहरण हैं।

विश्व के सभी धर्मों में मूलतः निम्नलिखित समानताएँ पाई जाती है–

1. अहिंसा
2. दानशीलता
3. सत्य
4. पवित्रता
5. स्वनियन्त्रण

अहिंसा के लिए विचार, शब्द और कार्य में एकात्म होना आवश्यक है। अहिंसा का अर्थ कायरता अथवा निर्बलता कदापि नहीं है, अपितु अहिंसा का अर्थ उच्चतम वीरत्व है। अहिंसा के लिए निरन्तर प्रयास आवश्यक है, अत्यधिक धैर्य, सहनशीलता और अध्यवसाय, आध्यात्मिक शक्ति और उच्च संकल्प शक्ति का होना आवश्यक है।

सत्य और अहिंसा सदैव सहगामी हैं। अहिंसा धर्म स्वीकार कर सत्य पथ पर गमन करने वाला व्यक्ति सम्पूर्ण विश्व में मान्य होता है। उसकी उपस्थिति में वैर भाव समाप्त हो जाता है।

हिन्दु, बौद्ध और जैन धर्म अहिंसा पर सर्वाधिक बल देते हैं। लार्ड जीसस भी अहिंसा के सिद्धान्तों को शिरोधार्य करते हुए कहते हैं–''किसी की हिंसा का प्रत्युत्तर अहिंसा से देने पर वह व्यक्ति भी हिंसा करना छोड़ देता है''–

**ऋतस्य प्रथाप्रेतः।**[73]

अर्थात् सत्य मार्ग पर चलो। विचार शब्द और कार्य में सत्यधर्मिता होनी चाहिये। सत्यवादी व्यक्ति में अन्य सद्‌गुण स्वतः ही आ जाते हैं। हरिश्चन्द्र ने सत्य की रक्षा के लिए सर्वस्व त्याग दिया, युधिष्ठिर भी महान् सत्यवादी थे। यही नहीं सत्य रक्षा के लिए सर्वस्व त्याग कर देने वाले अनेकों आदर्श चरित्रों से भारतीय इतिहास भरा पड़ा है।

मन्त्रदृष्टा ऋषियों ने वैदिक मन्त्रों के द्वारा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के संरक्षण की अभिलाषा की है, मन, कर्म तथा वचन में पवित्रता की अभिलाषा की है। पवित्रता दो प्रकार की होती है– बाह्य तथा आन्तरिक। वैदिक धार्मिक प्रबन्धन में दोनों ही प्रकार से मनुष्य किस प्रकार पवित्र हो सकता है, इसके उपाय व विधान सभी का वर्णन है। मनुष्य शरीर ईश्वर द्वारा प्रदत्त है तथा इसमें ईश्वर का निवास होता है। इसे सदैव स्वच्छ रखना, प्रतिदिन स्नान ध्यान करना चाहिये। मस्तिष्क की पवित्रता के लिए संतुलित आहार विहार का वर्णन है। भोजन का मस्तिष्क पर प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। सात्विक अन्न मस्तिष्क को पवित्र कर सकारात्मक ऊर्जा प्रदान करता है। पवित्र हृदय व्यक्ति के लिए आध्यात्मिक मोक्ष प्राप्ति का पथ सरल हो जाता है।

वैदिक वाङ्मय में दान को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। दान स्तुतियों का वर्णन यह दर्शाता है कि दान करने की परम्परा दान का महत्त्व तथा दान करने से आत्मा को मिलने वाले सुख के विषय में प्राचीन ऋषिगण भलीभाँति परिचित थे।

---

[73] यजुर्वेद, 7.45

ऋग्वेद के दशम् मण्डल का 107वाँ सूक्त दक्षिणा सूक्त तथा 117वाँ दान सूक्त है। दोनों में ही उत्तम दाता, दान, देय दानपात्र और दान का फल आदि का विवरण है। कुछ चयनित सूक्त निम्न है–

दक्षिणावान् प्रथमो हत एधि दक्षिणावान् ग्रामणीरग्रमेति।
तमेन मन्ये नृपतिं जनानां य प्रथमो दक्षिणामविवाय।।
न भोजा मम्रुर्न न्यर्थमीयुर्नरिष्यन्ति न व्यथन्ते ह भोजाः।
इदं यद्विश्वं भुवनं स्वश्चैतत् सर्वं दक्षिणैभ्यो ददाति।।
भेजमश्वाः सुष्ठु वाहो वहन्ति सुवृद्रथो वर्तते दक्षिणायाः।
भोजं देवासोऽवता भरेषु भोजः शत्रुन्त्समनीकेषु जवा।।
य आघ्रायचक्रमानाय वित्वोऽन्नवान्त्सन्न फितायोपजग्मुषे।
स्थिरं मनः कृष्णुते सेवते पुरोतो चित् स मर्डितारं न विन्दते।।
न स सखा योन ददाति सख्ये सचाभुवे सचमानाय पित्वः।
आपास्मात् प्रेयान्न तदाको अस्ति पृणन्तमन्यं मरणं चिदिच्छेत्।।
पृणीयदिन्नाधमानाय तव्यान् द्राधीयांसमनु पश्येत पन्थाम्।
ओ हि वर्त्तन्ते रथ्येव चक्रान्यमन्युमुवप तिष्ठन्ति रायः।।
मोघामन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् सतश्य।
नायमेणं पुष्यति नो सखाय केवलाघो भवति केवलादी।।[74]

ऋग्वेद के प्रकृत सूक्त का हिन्दी रूपान्तरण प्रस्तुत है, जो समावर्तन मासिक पत्रिका में मुद्रित है–

**सनातन हैः उदर–स्वर**

(1) यह अमर्त्य है
सर्वशक्ति सम्पन्न
क्या? उसने अकिंचन को
क्षुधा–विष मारने के लिए दिया है?
नहीं,

---

[74] ऋग्वेद, 10.117

आखिर क्षुधा–तृप्त भी तो
कभी न कभी मृत्यु–मुखी होता ही है,
यह सत्य है, सार्वकालिक कि
सर्वजन तृप्तिकारक यजमान
धन–साधन से रिक्त नहीं होता
भूख मिटाना उसका होता है
समाज–सन्देश।
लेकिन अदाता को कहाँ सुख–चैन
धिक्कार का है वह पात्र सदा।।

(2) सुनो! सुनो! अन्न–भण्डारी
अशक्त को
बुभुक्षित याचक को
साधनहीन इन्सान को
समागत अतिथि का, कर साक्षात्कार जो
छुपाता है अपनी भरी–पूरी थाली
सुख–सुविधा वंचित है, वह
बहिष्कृत विस्मरणीय।।

(3) सभ्य समाज साधक है, वह
जो, क्षुधा व्याकुल याचक को
दुर्बल निर्धन को
उदर भरण निमित्त कर देता है
विनियोग, जन–यज्ञ में
वही,
फल–भोक्ता है, आस्वादक है,
अ–मित्रों का भी शाश्वत मित्र।।

(4) त्याग दो, उस प्रच्छन्न मित्र को
जो, छुपाता है साथी से अपनी थाली
सेवक को रखता है, भूखा
घर उसका श्मशान है, शून्य है।
परन्तु, तृप्ति बोध का आराधक
वरेण्य है–अभिगम्य है,सद्गृहस्थ है।।
(5) रथ चक्र–सी गति है धन की, जो–
ऊपर नीचे चलायमान है;
अस्थिर है, क्षणिक है
इसीलिए–ऋषि–वचन विन्यास है
कुछ होने की सार्थकता है–
याचक अभिलाषा परिपूर्ति में
तभी तो वह,
यशस्वी है, सर्वमान्य है।।

(6) अदाता की सम्पत्ति का
गूढ़ सत्य कुछ कहता है,
कृपणत्व मरण–धर्मा है,
वह, देवत्व का तिरस्कारकर्त्ता है
पालनीय का हिंसक,
वह, केवल पापभक्षी नराधम।।

(7) अन्नोत्पादन धरा–धर्म है,
न इसका है न उसका है
पृथ्वी–प्रसाद का है– यह फलितार्थ
वितरणकर्ता है– त्याग–मूर्ति
कृपण, से वह सदा श्रेष्ठ
मनुष्यता का पर्याय
‘ सह नौ भुनक्तु’ का पाठक।।

(8) विडम्बना यह कैसी है
एक–दो की चाह में,
दो–तीन की चाह में,
तीन–चार की चाह में,
और–
चार......... अन्तहीन प्रतिस्पर्धा
धन–धान्य का स्वामित्व
एकाधिकार का निश्चय
क्या है यह लिप्सा?
मात्र स्वयं सिद्ध सन्तुष्टि
किन्तु,
सब कुछ छल है
आत्मवंचना है।।

(9) हाथ दोनों,
एक–से दिखलाई देते हैं
फिर भी– कार्य भेद है
एक सशक्त, दूसरा अशक्त।
समान गायें हैं, पर
दूध की मात्रा है –भिन्न–भिन्न।
जुड़वा भाइयों का
स्वभाव– कार्य
एक रूप दिखता नहीं
आओ,
विचार करें
तृप्त–अतृप्त का भेद मिटे

**और,**
**उदर–स्वर स्वतिवाचक हो जाये।।**[75]

उपर्युक्त सभी मन्त्र यही उपदेश देते हैं कि दान की महिमा अनन्त है। जो व्यक्ति दान करता है वह स्वर्ग में स्थान पाता है। उसका नाम इस संसार में अमर हो जाता है। जो अन्न होने पर भी किसी भूखे मनुष्य को अन्नदान नहीं करता,वह किसी प्रकार का सुख प्राप्त नहीं कर सकता। जो मित्र अपने याचक मित्र को देखकर मुँह फेर लेता है, वह मित्र कहलाने योग्य नहीं होता। धन रथ चक्र के समान होता है, कभी किसी के पास तो कभी किसी ओर के पास। वह एक स्थान पर स्थिर नहीं रहता।

भारतीय संस्कृति में दान का विशेष महत्त्व रहा है। मनुस्मृति के अनुसार सतयुग में तप, त्रेतायुग में ज्ञान, द्वापर युग में यज्ञ व कलयुग में दान को महर्षियों ने प्रधान धर्म माना है। दान के लिए धर्मशास्त्र में 'प्रतिग्रह' शब्द का उपयोग किया है। दान के धार्मिक उद्देश्य के साथ–साथ सामाजिक उद्देश्य भी है। यथा भूमिदान, ग्रामदान, कुएँ, तालाब खुदवाना, गौ दान, कन्यादान, बौद्ध विहारों के दान, श्रमदान, नेत्रदान, अन्नदान आदि।

दान का योग्य दाता वही है जो श्रद्धा व निःस्वार्थ भावना से दान करे। अग्निपुराण के अनुसार श्रद्धापूर्वक दिया गया जल भी अक्षय पुण्य का कारक होता है। दानदाता का सदाचारी होना भी आवश्यक है। दान देने के लिए वही पुरुष श्रेष्ठ है जिसके आचरण में सदाचार, विद्या, तपस्या आदि सद्गुणों का समावेश हो। श्रद्धापूर्वक दिये गये दान का विशेष महत्त्व है। प्राचीन वैदिक वाङ्मय में कहा गया है कि घर में दिया गया दान दस गुना, गौ शाला में दिया गया दान सौ गुना,

---

[75] ऋग्वेद, 10.117 का हिन्दी रूपान्तरण डॉ. केदारनाथ शुक्ल, साभार समावर्तन

तीर्थों में सहस्त्र गुना तथा शिव की आकृति के सामने अनन्त फल देने वाला है। पौराणिक साहित्य में भगवद्गीता के अनुसार सात्विक दान, राजस दान, तामस दान का अपना महत्त्व है।

आधुनिक समय में बड़े–बड़े उद्योगपति तथा कंपनियाँ दान देने के शुभ कार्य में संलग्न हैं। श्री नारायण मूर्ति, अजय पिरामल, किरण मजुमदार जैसे उद्योगपति अनेक चलचित्र अभिनेता, खिलाड़ी आदि भी अपनी आय का कुछ प्रतिशत भाग समाज की उन्नति के लिए दान करते हैं। वैदिक काल तथा आधुनिक काल की दान परम्परा तथा शैली में आमूल परिवर्तन दृष्टिगोचर है किन्तु दान की प्रक्रिया के परोक्ष में छिपी सद्भावना तथा सामाजिक उन्नति की भावना यथावत् है।

उदाहरणार्थ कार्पोरेट जगत के दिग्गज बिल गेट्स ने बिल एण्ड मिलिन्डा गेट्स फाउण्डेशन के माध्यम से 1994 में एक निजी फाउण्डेशन की स्थापना की। यह फाउण्डेशन शिक्षा, स्वास्थ्य, गरीबी उन्मूलन, एड्स रोकथाम, पोलियो उन्मूलन तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी विभिन्न फाउण्डेशनों को सहायता राशि देता है। इस राशि का समुचित उपयोग ही इस बात की जानकारी भी रख्ता है। यह संस्था बिल गेट्स, उनकी पत्नी मिलिन्डा गेट्स तथा अरबपति व्यवसायी वॉरेन बफेट द्वारा संचालित की गई है। इन प्रयासों से यह कहा जा सकता है कि बिल गेट्स तथा उनके सहयोगियों द्वारा परोपकारिता तथा दान के क्षेत्र में भी कार्पोरेट सहभागिता को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया है।

यह सूची यही समाप्त नहीं हो जाती। अनेक भारती विभूतियों ने भी अपनी प्राचीन धार्मिक प्रबन्धकीय परम्पराओं को आगे बढ़ाते हुए देश व समाज की उन्नति के लिए अनेक प्रकार से दान देने के कार्य को सम्पन्न किया। कुमार बाहुलेयन एक दलित परिवार में जन्मे, अमेरिका में व्यापार किया तथा कारोबार के विस्तृत हो जाने पर अपने केरल स्थित गृहनगर को करोड़ों रूपयों का दान

दिया। एयर मार्शल अर्जुनसिंह ने दो करोड़ रूपयों से न्यास की स्थापना सैनिक सहायतार्थ की। रणवीरसिंह गुप्ता आईआईटी खड़गपुर के छात्र रहे हैं और उन्होंने उसी संस्था को इसी वर्ष 10 लाख डालर दान दिये।

अनेक आलोचकों के अनुसार समाज सेवा करने से कम्पनी के 'प्रोफाईल' में सकारात्मक परिवर्तन आता है तथा कम्पनी अधिकारियों तथा कर्मचारियों का दृष्टिकोण विस्तृत होता है। योग्य व्यक्ति को यथेष्ट वस्तु देने पर मन सकारात्मक ऊर्जा से परिपूर्ण हो जाता है तथा व्यक्ति ईश्वर को धन्यवाद देता है कि हमें इस योग्य बनाया। इस आत्मिक संतुष्टि का ज्वलन्त उदाहरण है कि सम्पूर्ण भारत में विशाल मन्दिरों की दान पेटियों में अज्ञात व्यक्तियों द्वारा दिया गया गुप्त दान विस्मित कर देने वाला होता है।

आधुनिक युग में नवीन वैज्ञानिकों, तकनीकों तथा मोबाईल फोन भी 'दान पात्र' का रूप धारण कर चुका है। इस्कॉन (इन्टरनेशनल सोसायटी फॉर कृष्ण कॉन्शिसनेस) के दान कार्यक्रम के अन्तर्गत क्रेडिट कार्ड का उपयोग कर मोबाईल फोन के द्वारा आर्थिक सहायता कर सकते हैं। एक सर्वेक्षण के अनुसार गैर सरकारी संगठन 'गिव इंडिया' और :कैंसर पेशेंट एसोसिएशन ऑफ इंडिया आदि संगठन भी मोबाईल के द्वारा दान ग्रहण करते हैं।

भारत सरकार द्वारा भी दान से दी गई रकम को कर मुक्त किया गया है। भारतवर्ष की दान परम्परा को सर्वत्र शिरोधार्य कर स्वीकारा गया है। कुछ अग्रणी दानदाता कम्पनियों तथा मुख्यतः जिन क्षेत्रों में कार्य किया जा रहा है उसका विवरण इस प्रकार है–

## तालिका[76]

| समाज की उन्नति के लिए दान देने वाले अग्रणी व्यक्तित्व | सामाजिक क्षेत्र में दान करने वाली अग्रणी स्वयंसेवी संस्थाएँ तथा कंपनियाँ | समाजसेवा के क्षेत्र |
|---|---|---|
| श्री नारायण मूर्ति | गूँज | वृक्षारोपण<br>गरीब स्कूली बच्चों की सहायतार्थ कपड़े, टिफिन, बॉटल, बर्तन, स्कूल बेग, स्कूलों में दोपहर का भोजन, प्राकृतिक आपदाओं से निपटने के लिए आर्थिक सहायता आदि। ग्रामों के शैक्षणिक व आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए। |
| अजय पिरामल | आईडिया सेल्युलर | |
| एदी गोदरेज | एक्सिस बैंक | |
| सचिन तेन्दुलकर | फ्रैंकफर्ट | |
| किरण मजुमदार | पारले | |
| धीरूभाई अम्बानी | रिलायंस समूह | |
| | गिव इंडिया फाउण्डेशन | |
| लक्ष्मी निवास मित्तल | स्टील किंग | श्रमिक कल्याण एवम् श्रमिकों के परिवारों का समुचित भरण–पोषण के लिए विभिन्न योजनाएँ |
| स्व. जमशेदजी टाटा | टाटा समूह | |
| एस्कॉर्ट्स समूह | एस्कॉर्ट्स | स्थान स्थान पर स्वास्थ्य केन्द्रों का निर्माण |
| के.के. बजाज (बजाज समूह) | बजाजा ऑटो लि | परिवार नियोजन संसाधनों का निःशुल्क वितरण |
| ललित कुमार जैन | लक्ष्मी प्रीसीज़न स्क्रूज लि. | पिछड़े क्षेत्रों के विकास की योजना, रोजगार के अवसरों का सृजन, जैन मंदिरों का निर्माण, बच्चों की शिक्षा व्यवस्था |

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्राचीन भारतीय धार्मिक प्रबन्धन दर्शन के सत्व रूप ''दान'' के महत्त्व को जान कर अपनी अन्तरात्मा की पुकार सुन कर समाज के वांछित व्यक्तियों के लिए

---

[76] स्रोत– साहित्य विश्लेषण, जर्नल्स एवम् संङ्गणक के आधार पर संकलित एवं विकसित

दान व सहायता से सम्पूर्ण समाज की उन्नति संभव है। वर्तमान प्रबन्धकीय अवधारणा में दान को ''क्रिएटिव कैपिटेलिज्म'' (सकारात्मक पूँजीवाद) के रूप में वर्णित किया गया है। बिल गेट्स के अनुसार ''सफल उद्यमी व प्रबन्धक चुनौतियों का सामना व उनका हल खोजने में सिद्ध होते हैं तो क्यों न वे विश्व के गरीब लोगों की समस्याओं का हल ढूँढें। यदि पूँजीपति अपनी पूँजी के विस्तार के नए उपाय खोज सकता है तो गरीबों की गरीबी दूर करने के उपाय भी सोच सकता है।''

यही प्राचीन भारतीय धार्मिक प्रबन्धन है, सभी धर्म नैतिक मूल्यों, मानवीय मूल्यों तथा सदाचार का ही पक्ष लेते हैं। बाह्य धरातल पर अथवा मनुष्य अपनी तुच्छ बुद्धि द्वारा सभी धर्मों में भेद देख सकता है, किन्तु तात्विक दृष्टि से सभी धर्म विश्व शान्ति, एकता तथा प्रेम का ही वर्णन करते हैं। शुक्ल यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में प्रथम मन्त्र भारतीय मनीषा के परिनिष्ठित विचार के अन्तर्गत घोषणा करता है–

**ईशावास्यमिदंसर्वं यत् किंचित् जगत्याम् जगत्।**
**तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृदाकस्य सिद्धनम्।।**[77]

---

[77] ईशोपनिषद्

## राजनीतिक प्रबन्धन

अन्यान्य प्रबन्धनों की भाँति राजनीतिक प्रबन्धन में भी जैविकों तथा मशीनों (यन्त्रों)की व्यवस्था की अनुरुपता पाई जाती है। शासन के मुख्यतः तीन अंग होते हैं – व्यवस्थापिका, कार्यपालिका एवम् न्यायपालिका। इन्हीं तीनों के सुप्रबन्धित कार्य संचालन से ही शासन सुचारू रुप से गतिमान हो सकता है। राजनीतिक प्रबन्धन की अभिधारणा में वस्तुतः राज्य, सरकार व उसके विभिन्न अंग तथा परम्परागत राजनीतिक संस्थाएँ ही सम्मिलित नहीं होती अपितु उसमें वे सभी अन्य संस्थाएँ भी सम्मिलित हैं जिनका रुप न तो राजनीतिक होता है और न वे राजनीति को प्रत्यक्ष रुप से प्रभावित ही करती हैं अपितु वे अराजनीतिक होते हुए भी राजनीति को परोक्ष रुप से प्रभावित करती हैं।

इस प्रकार राजनीतिक प्रबन्धन का संबंध जन कल्याण, आर्थिक विकास, सामाजिक न्याय, स्वतंत्रता, समानता एवम् शक्ति की गरिमा आदि से है। राजनीतिक प्रबन्धन के अन्तर्गत राज्य और उसका शासन (सरकार) के विकास एवम् कार्यों को समझना भी नितान्त आवश्यक है। राजनीतिक प्रबन्धन वैदिक युगीन हो अथवा आधुनिक वह कई निर्धारक घटकों पर आश्रित होता है–

**तालिका**[78]

| क्रमांक | निर्धारक घटक |
|---|---|
| 1 | सांस्कृतिक घटक |
| 2 | सामाजिक घटक |
| 3 | धार्मिक घटक |
| 4 | राजनीतिक घटक |
| 5 | आर्थिक घटक |
| 6 | ऐतिहासिक तथ्य व पृष्ठभूमि |

अति प्राचीन वैदिक वाङ्मय वर्तमान राजनैतिक संदर्भ में भी दैदीप्यमान प्रकाशपुंज की भाँति कर्तव्य, मर्यादा एवम् अधिकारों के स्पष्ट दिशा–निर्देश प्रदान करते हैं।

अर्वाचीन राजनेताओं व प्रशासकों के नैतिक ज्ञानवर्धन के लिये पुरातन भारतीय सांस्कृतिक शिक्षा के रुप में वेदों में उपलब्ध ज्ञान अनुकरणीय व उपादेय है। स्वराष्ट्र के प्रति सम्मान, समर्पण व

---

[78] स्रोत– साहित्य विश्लेषण, जर्नल्स एवम् संङ्गणक के आधार पर संकलित एवं विकसित

सेवा भावना वैदिक वाङ्मय में स्पष्ट दृष्टव्य है। यजुर्वेद की अधोलिखित उक्ति में न्यूनतम शब्दों के माध्यम से गूढ़ अर्थाभिव्यक्ति से स्पष्ट है कि तत्कालीन आर्यों के लिये राष्ट्र सेवा व सुरक्षा ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण अभिलाषा थी और वर्तमान समय में भी यह विचार प्रत्येक व्यक्ति के अन्तःकरण में हो यह अत्यन्त आवश्यक है–

**वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः।**[79]

राजनीतिक व्यवस्था सदैव राष्ट्र के अस्तित्व को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये प्रयत्नशील होती है यथा –

**ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयता ध्रुवम्।**[80]

अर्थात् वैदिक वाङ्मय में राष्ट्र को स्थिर बनाये रखने के लिये सभी देवताओं से प्रार्थना की गई है कि वरुण देव राष्ट्र को अविचल करें, बृहस्पति राष्ट्र को स्थिर करें, इन्द्र राष्ट्र को सुदृढ़ करें एवम् अग्नि देव राष्ट्र को निश्चल रुप से धारण करें।

## वैदिक एवम् अर्वाचीन राष्ट्र (सरकार) की अवधारणा एवम् उनका प्रबन्धन

वैदिक वाङ्मय में प्रजा (जनता) को प्रायः सर्वत्र 'विशः' (विश् का बहुवचन) के रुप में वर्णन किया गया है। तत्कालीन जनता अपने बीच से ही योग्य व्यक्ति को राजा के रुप में चुनती थी। राजा को वैदिक मन्त्रों में 'विशपति' कहा गया है। वर्तमान लोकतांत्रिक निर्वाचन प्रणाली वेदों द्वारा निर्दिष्ट प्रणाली के किंचित समान ही है। सम्पूर्ण प्रजाजन द्वारा राजा का चुनाव किये जाने का वर्णन प्राप्त है –

---

[79] यजु. 9.23
[80] ऋग्वेद 10.173.5

**त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः पंचदेवीः।**[81]

योग्य राजा का निर्वाचन राज्य के लिये श्रेयस्कर समझा जाता था। यथा–

**जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतस्माकं**

**तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं।**

**यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं**

**प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्।।1।।**[82]

अर्थात् इस योग्य पुरुष को चुनने से हमारी विजय होगी, हमारी उन्नति होगी, हमारा आरोग्य होगा, तेज, ज्ञान व आत्मिक बल बढ़ेगा। हमारा यज्ञ सफल होगा, हमारे पशु उत्तम होंगे, हमारी संतति प्रबुद्ध होगी और शूरवीर पुरुष (सेना) हमारे पास होंगे। अतः हम इस योग्य पुरुष को चुनते हैं।

इस उक्ति के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि योग्य नेतृत्व ही राष्ट्र, परिवार अथवा किसी भी संस्थान के प्रबन्धन के लिये, उन्नति के लिये आवश्यक है। वैदिककालीन राजा से प्रजा (विशः) की जो अपेक्षाऐं थीं, वही वर्तमान में राजनीतिज्ञों एवम् कंपनी के शीर्षस्थ अधिकारियों से अपेक्षित है और इसी में समाज का कल्याण निहित है।

'राष्ट्र' यह शब्द आर्य संस्कृति में जनमानस के मन में गहरे तक उतरा हुआ था। वे अपने राष्ट्र पर गर्व अनुभव करते थे। तत्कालीन आर्य राष्ट्र रक्षा के लिये अपने प्राणों को भी त्यागने को तत्पर रहते थे। वर्तमान समय में अपना सर्वस्व राष्ट्र पर न्यौछावर करने के स्थान पर राजनेता तथा जनता दोनों ही अपना स्वार्थ सिद्ध करने का ही प्रयास करते है। और यही कारण है कि किसी समय सम्पूर्ण विश्व को आत्मज्ञान का संदेश प्रसारित करने वाली भारतीय संस्कृति आज अपने सांस्कृतिक मूल्यों को भूलकर पतन की ओर अग्रसर है।

---

[81] अथर्व. 3.4.2
[82] अथर्व. 16.8.1

वैदिक कालीन प्रजा राजा से सदैव राष्ट्र रक्षा का अनुरोध करती थी तथा उसका साथ देने को तत्पर रहती थी –

**अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातयः।**
**अभिपृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो न इरस्यति।।**[83]

अर्थात् हे राजन्! आप हमारी रक्षा करें जो विपक्षी है, जो हमारे हिंसक शत्रु हैं, जो सेना लेकर हमारे राष्ट्र में युद्ध करने आते हैं उनसे हमारी रक्षा करें।

यद्यपि किसी पड़ौसी राष्ट्र अथवा दुर्बल पर आक्रमण न करना आर्य परम्परा है और आज तक हमारा इतिहास यही है कि भारत आत्मरक्षा को सदैव तत्पर रहता है किन्तु किसी देश पर आक्रमण करने की नीति भारत की नहीं है। हाँ और हमसे जो द्वेष करते हैं, राजन्, उन्हें अभिभूत करो।

वर्तमान शासन व्यवस्था के समान ही राजा का निर्वाचन प्रजा द्वारा ही होता था–

**भूतो भूतेषु पय आ दधाति स भूतानामधिपतिर्वभूव।**
**तस्य मृत्युश्चरति राजसूयं स राजा राज्यमनु मन्यतामिदम्।।1।।**
**अभि प्रहि माप वेन उग्रश्चेता सपत्नहा।**
**आ तिष्ठ मित्रवर्धन तुभ्यं देवा अधिब्रुवन्।।2।।**
**आ तिष्ठन्तं परि विश्व अभूषञ्छ्यिं वसानश्चरति स्वरोचिः।**
**महत् तद् वृष्णा असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ।।3।।**
**व्याघ्रो अधि वैयाघ्र विक्रमस्व दिशो महीः।**
**विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्त्वापो दिव्याः पयस्वतीः।।4।।**
**या आपो दिव्याः पयसा मदन्त्यन्तरिक्ष उत वा पृथिव्याम्।**

---

[83] ऋग्वेद 10.174.2

**तासां त्वा सर्वासामपामभि षिञ्चामि वचसा।।5।।**

**अभि त्वा वर्चसासिचन्नापो दिव्याः पयस्वती।**

**यथासो मित्रवर्धनस्तथा त्वा सविता करत।।6।।**

**एना व्याघ्रं परिस्षवजानाः सिंहं हिन्वन्ति महते सोभगाय।**

**समुद्रं न सुभुवस्तस्थिवांसं मर्मृज्यन्ते द्वीपिनमप्स्वन्तः।।7।।**[84]

अथर्ववेद के चौथे काण्ड के आठवें सूक्त में पुरोहित निर्वाचित राजा का अभिषेक करते हुए कहते हैं कि अभिषिक्त होने पर ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाला और अनुजीवियों को अन्न दान करने वाला राजा ही प्राणधारियों का स्वामी होता है। यमराज प्राणियों पर शासन करने और दुष्टों को दण्ड दिलाने के निमित्त ही राजा से राजसूय यज्ञ कराते हैं। हे राजन्! तुम हाथी, घोड़ा, रथ, राज्य, सिंहासन आदि के प्रति उदासीन न होवो। तुम कार्याकार्य के विभाव के ज्ञाता और महाबली हो। इन्द्रादि देवता तुम्हें 'अपना' कहें। सिंहासनारूढ़ राजा की सब सेवा करें और राजा भी प्रजा पालन में तत्पर हों। अभिषेक से उत्पन्न राज्य तेज दशों दिशाओं में व्याप्त हो और भय से त्रस्त शत्रु भाग जाएँ। यह राजा शत्रु, मित्र, स्त्री आदि से विविध प्रकार वर्तता हुआ दण्ड युद्ध और अध्ययन आदि कार्यों का करने वाला हो। हे राजन्! व्याघ्र चर्म पर बैठकर पूर्वादि दिशाओं को विजय करो। तुम तेजस्वी हो, तुम्हें सब प्रजा अपना अधिपति स्वीकार करे। तुम्हारे देश में अनावृष्टिरूप अकाल न हो। हे राजन, जो स्वर्गस्थ जल प्राणियों को तृप्तिकर है, जो जल पृथिवी और अन्तरिक्ष में है, उन लोकत्रय में व्याप्त जलों के अपरिमित पराक्रम वाले रस से तुम्हें अभिषिक्त करता हूँ। हे राजन्! दिव्य जल अपने तेज से तुम्हें सींचे। तुम अपने मित्रों की स्थिति में वृद्धि कर सको, सूर्य उसी प्रकार सामर्थ्यवान करे। वीर राजा को जल माता के समान हर्षित करने वाले व सौभाग्य प्राप्त कराने वाले हो। सेवकगण वस्त्र मुकुट, अलङ्कार आदि से राजा को सुशोभित करते हैं। ऋग्वेद में राजा शत्रुओं से हमारी रक्षा करें यह वचन प्राप्त होता है।

---

[84] अथर्व. 4.8.1–.7

विशः अर्थात् जनता राजा के चुनाव के पश्चात् सभी देवताओं से राजा के स्वास्थ्य व स्थायित्व की कामना करते थे तथा सत्य के पथ पर अग्रसर होते हुए राजा से देश रक्षा की अपेक्षा करते थे–

**परित्वा धात् सविता देवो अग्निर्वर्चसा मित्रावरुणावभि त्वा।**
**सर्वा अरातीरवक्रामन्नेहीदं राष्ट्रमकरः सूनृतावत्।।**[85]

अर्थात् हे राजन्। सविता देवता आपको चारों ओर से पुष्ट करें, अग्निदेव और मित्र तथा वरुण देवता आपको पुष्ट करें, आप सब शत्रुओं को दबाते हुए राष्ट्र में आइये और इस राज्य की अपनी प्रिय सत्यवाणी से सम्पन्न करिये।[86]

राजा का पद प्रतिष्ठा व उत्तरदायित्वपूर्ण होता था तथा राजा की प्रतिष्ठा प्रजापालन में होती थी –

**विशि राजा प्रतिष्ठितः।**[87]

वर्तमान प्रबन्धकीय संदर्भ में देखें तो देश के अग्रणी नेतागण हों, किसी कम्पनी के मुख्य प्रबन्धक हों अथवा परिवार प्रमुख का पद हो प्रतिष्ठा एवम् उत्तरदायित्वपूर्ण होता है। प्रसिद्ध प्रबन्ध वैज्ञानिकों के अनुसार किसी समूह या संगठन का प्रमुख जिन कार्यों को मुख्य रुप से संपादित करता है, वे हैं उद्देश्यों का निर्धारण, कार्य के साधनों पर नियंत्रण, उपलब्ध साधनों का प्रबन्धन, क्रियाओं को गतिमान रखना, योजना का निर्माण करना, अधीनस्थों का मार्गदर्शन करना, कुशल अधिकारियों एवम् कर्मचारियों का समूह बनाना तथा उन्हें संरक्षण देना, अधीनस्थों की उपलब्धियों का मूल्यांकन करना तथा पुरस्कृत करना, संस्था में अनुशासन बनाये रखना, संस्था के नियमों एवम् परम्पराओं को

---

[85] अथर्ववेद. 13.1.20

[86] अथर्ववेद संहिता–भाष्यानुवाद सहित, पं. रामस्वरुप शर्मा गौड़, पृ.152

[87] यजु. 20.9

जानना एवम् उनका पालन करना, राष्ट्र (संस्था) की आवश्यकताओं के प्रति सचेत रहना, भविष्य में सम्भावित घटनाओं का पूर्वानुमान लगाना आदि।[88]

राजा अथवा नेता के व्यवहार एवम् कार्य प्रक्रिया का सीधा प्रभाव अनुयायियों के कार्यों एवम् गतिविधियों पर पड़ता है, अतः उसे प्रत्येक कार्य अत्यधिक धैर्य के साथ विचारपूर्वक करना चाहिये।

वैदिककालीन शासन व्यवस्था एवम् राजनीतिक तन्त्र मर्यादित व आदर्श था। वैदिक राज्य व्यवस्था के अनेक रुप थे तथा प्रजा की प्रत्येक टुकड़ी को ग्राम के रुप में वर्णित किया गया था। यहाँ ग्राम का अर्थ समुदाय होता है। प्रत्येक ग्राम का सामाजिक संगठन था। ग्राम का मुखिया या प्रमुख ग्रामणी कहलाता था। प्राचीन भारतीय संस्कृति में ग्रामों में पंचायतों का अस्तित्व था। ग्रामों में ही नहीं अपितु नगरों में व्यापारियों तथा विभिन्न व्यावसायियों व जाति वर्गों के संघ अस्तित्व में थे जो अपनी संघीय परम्परा के अनुसार अपने विवादों का निर्णय करते थे। इन संघों को प्राच्य साहित्य में भिन्न भिन्न नामों व रुपों द्वारा स्वीकार किया गया है। यथा – कुल, श्रेणी, गण, पूग आदि–

**नृपेणाऽधिकृताः पूगाः श्रेणयोऽथ कुलानीच।**[89]

अथर्ववेदानुसार नागरिक और सैनिक दोनों कार्यों का संपादन करने वाला गांव का प्रधान होता था जो राजा की समिति का सदस्य होता था और राजा के चुनाव में भाग लेता था (वर्तमान चुनाव प्रक्रिया में भी जनता के चुने हुए प्रतिनिधि सर्वसम्मति से ही प्रधानमंत्री का चुनाव करते हैं।)

वैदिक राजा भी अपने कर्तव्यों एवम् उत्तरदायित्वों के प्रति सचेत रहते थे। राष्ट्र रक्षा के लिये प्राणों के बलिदान को भी सदैव तत्पर रहते थे –

**अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम्।**
**अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशमाशां विषासहिः।।**[90]

---

[88] प्रशासनिक सिद्धांत एवम् प्रबन्धन, डॉ. सुरेन्द्र कटारिया, पृ.373

[89] याज्ञवल्क्य स्मृति 1.74

अर्थात् मैं अपनी मातृभूमि के लिये तथा उसके दुःख–विमोचन के लिये सब प्रकार से कष्ट सहने को तैयार हूँ – वे कष्ट जिस ओर से आवें, चाहे जिस समय आवें, मुझे चिन्ता नहीं।

राजा प्रजा की रक्षा के लिये दृढ़प्रतिज्ञ रहते थे। आत्मविश्वास से परिपूर्ण वे कहते थे –

**भूमे मातर्नि धेहि मा भप्रया सुप्रतिष्ठितम्।**
**संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम्।।**[91]

अर्थात् हे मातृ भूमि! मुझको कल्याणकारिणी प्रतिष्ठा से सुप्रतिष्ठित कर स्थापित कीजिए, हे कवे! मुझे स्वर्ग प्राप्त कराइये, मुझको लक्ष्मी और विभूति में स्थापित कीजिए।

वैदिक कालीन ग्रामों के स्वरुप के समान ही आज भी हमारे देश में जिसे 'गाँवों का देश' कहा जाता है और कहा जाता है कि भारत गाँवों में बसता है, पंचायतों का इसी स्वरुप में गठन किया जाता है। गाँवों के प्रमुख को 'सरपंच' का सम्बोधन दिया गया है। प्राचीन भारत में ग्राम पंचायतें विवादों के निर्णय लेने को आंशिक रुप से स्वतंत्र थीं परन्तु कुछ परिस्थितियों में निर्णयों के क्रियान्वयन का अधिकार राजा के पास सुरक्षित था। विशेष परिस्थितियों में राजकीय नियमों का पालन न करने पर पंचायतों के लिये भी उचित दण्ड का प्रावधान था–

**एतद् दण्डविधिं कुर्यात् धार्मिकः पृथिवीपतिः।**
**ग्राम जाति समूहेषु समय व्यभिचारिणाम्।।**[92]

वैदिककाल में जब कोई विपत्ति, संकट अथवा आक्रमण होता था तब 'विशः' के अनेक ग्राम एकत्रित होकर संयुक्त रुप से उस विपत्ति का सामना करते थे। इसी 'एकत्रीकरण' का नाम 'संग्राम' स्वीकारा गया है। संग्राम ही युद्ध का पर्याय है।

प्रायः राष्ट्र की जनता ही राजा का चुनाव करती थी किन्तु कभी कभी राजा के योग्य उत्तराधिकारी को भी राजा नियुक्त किया जाता था। ऐसे उत्तराधिकारी राजा को प्रजा की स्वीकृति

---

[90] अथर्व. 12.1.54
[91] अथर्व. 12.1.63
[92] मनुस्मृति, 8.221

विधिवत् प्राप्त करना अनिवार्य थी। 'विशः' की स्वीकृति को 'वरण' कहा जाता था उसके उपरान्त राजा का राज्याभिषेक होता था, तदुपरान्त वह राजा का पद धारण करता था।

**इयं ते राष्ट्र। कृष्यै त्वा क्षेमायत्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा।**[93]

अर्थात् यह राष्ट्र अब तुम्हारा है। प्रजा की रक्षा के लिये उन्नति के लिये तथा पोषण के लिये। राज्याभिषेक प्रक्रिया पुरोहित द्वारा सम्पन्न कराई जाती थी। आज भी भारतीय संविधान में शपथ विधि समारोह का प्रावधान है। आज राष्ट्र के अग्रणी नेतागणों से यही अपेक्षा की जाती है कि वे प्रजा के प्रत्येक वर्ग के साथ समान व्यवहार तथा आदर करें, अपनी दूरदर्शिता, बुद्धि के द्वारा देश को उन्नति के पथ पर अग्रसर करें। राजा देश की रक्षा और कल्याण के लिये 'विशः' के सम्मुख प्रतिज्ञा भी करता था। प्रतिज्ञा भंग करने वाले राजा को प्रजा पदच्युत भी कर सकती थी।

वर्तमान प्रबन्ध विज्ञान की दृष्टि से भी राजा, नेता अथवा संस्थान प्रमुख को अपने व्यक्तित्व में अनेक योग्यताओं का सम्मिश्रण करना अनिवार्य है और उसकी लोकप्रियता भी इसी तथ्य पर निर्भर है।

वैदिक कालीन व उत्तर वैदिक साहित्य में भी यत्र–तत्र वर्णन प्राप्त है कि मनमानी करने पर राजा को पदच्युत किया जा सकता था।

आधुनिक युग में भी वैदिक कालीन शासन व्यवस्था का ही स्वरुप दिखाई पड़ता है। विश्व के अधिकांश देशों में शासन सत्ता विशः (जनता) के द्वारा चुनी जाती है। उदाहरणस्वरुप भारत में संसद व विधानसभा के सदस्यों का चुनाव भी जनता ही करती है एवम् केन्द्र व राज्य के क्रमशः प्रधानमंत्री एवं मुख्यमंत्री इन संस्थाओं के प्रति उत्तरदायी होते हैं। जनता की आकांक्षाओं के विरूद्ध जब सरकार कार्य करती है तब उसे राजा के ही भाँति अविश्वास प्रस्ताव द्वारा बहुमत से पारित कर सरकार को पदच्युत कर सकती है। अमेरिका एवम् भारत में राष्ट्रपति को भी संविधान का उल्लंघन

---

[93] यजु. 9.12

करने पर महाभियोग द्वारा पदच्युत करने का प्रावधान है। अमेरिका जैसे सर्वशक्तिशाली राष्ट्र में बराक ओबामा (जो कि एक अश्वेत हैं) का राष्ट्रपति चुना जाना देश की जनता की शक्ति व सहमति का ही परिणाम है। इस प्रकार वैदिक व आधुनिक राजनीतिक प्रबन्धन का अध्ययन करने पर हम कह सकते हैं कि जनता ही सम्प्रभु है।

## वैदिक एवम् आधुनिक काल में सरकार की नीति नियंत्रण प्रक्रिया

वैदिक काल में 'विशः' द्वारा ही एक समिति गठित की जाती थी जो राजा पर नियंत्रण रखती थी।

**अस्याः सर्वस्याः संसदोमामिन्द्र भगिनं कृणु।**[94]

विव्हट ने अथर्ववेद का अनुवाद किया, उनके मतानुसार संसद एक ऐसी संस्था ज्ञात होती है जिसमें सभा व समिति दो परिषदें सम्मिलित होती थीं। यही परिषदें राजा द्वारा सदन के समक्ष प्रस्तुत समस्याओं का समाधान एवम् आर्थिक, सामाजिक एवम् राजनीतिक विषयों पर परामर्श देती थीं। इसीलिये सभा व समिति को राजा की दो पुत्रियाँ कहा गया है –

**सभा चमां समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने।**[95]

समिति ही राजा के चुनाव, पदच्युति आदि का निर्णय करती थी। समिति का एक 'पति' (ईशान) कहलाता था। समिति का प्रत्येक सदस्य अपना मत देने में स्वतंत्र था। समिति में ग्रामणी, सूत (सारथी), रथकार और कर्मकार (हथियार निर्माता) आदि सदस्य अवश्य रहते थे। समिति का आधार बिन्दु ग्राम ही था। समिति में प्रत्येक ग्राम का प्रतिनिधित्व रहता था। समिति के अतिरिक्त 'सभा' नामक संस्था भी प्रचलित थी, जो कि चयनित लोगों (सभी आयु वर्ग) की एक लघु संस्था के रुप में अस्तित्व में थीं। सभा न्यायालय का भी कार्य करती थी।

---

[94] अथर्व. 7.12.3

[95] अथर्व. 7.12.1

अर्वाचीन युग में भी जनता द्वारा चुनी गई विधानसभा और संसद (लोकसभा) को भी जनता प्रत्यक्ष रुप से चुनती है। ये दोनों ही सभाऐं बहुमत के आधार पर विधानसभा में मुख्यमंत्री एवम् लोकसभा में प्रधानमंत्री का चयन करती हैं, जिन्हें क्रमशः राज्यपाल व राष्ट्रपति के समक्ष संविधान के अनुसार अपने उत्तरदायित्व, कर्तव्यनिष्ठा एवम् देशभक्ति की शपथ लेनी होती है। प्रधानमंत्री व मुख्यमंत्री क्रमशः लोकसभा व विधानसभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं। इन्हें सदन में जनता के द्वारा चयनित प्रतिनिधियों का बहुमत प्राप्त न होने पर अविश्वास प्रस्ताव द्वारा पदच्युत भी कर दिया जाता है। सत्ता का प्रमुख सर्वसम्मति से लिये गये निर्णयों को अधीनस्थों एवम् जनता तक प्रसारित करता है। अधीनस्थ ही आदेशों को स्वीकार कर सत्ता को बलवान व सुदृढ़ बनाते हैं। आदेशकर्ता का सर्वमान्य एवम् योग्य होना अनिवार्य है। उसके व्यक्तित्व में नकारात्मकता, शिथिलता, भ्रष्टाचार अथवा आत्मविश्वास में कमी का विपरीत प्रभाव अन्य अधीनस्थ कर्मचारियों की गतिविधियों पर पड़ता है। इसीलिये प्रसिद्ध है कि प्रशासन का प्रबन्धन एक कला है जिसमें कुशलतापूर्वक लोगों से कार्य करवाया जा सके। जब कोई उच्चाधिकारी अपने अधीनस्थों को सत्ता का अधिकार प्रदान करता है किन्तु नियंत्रण की सत्ता स्वयं के अधीन रखता है, वह अधिक सफल शासक हो सकता है।

वैदिक कालीन राज्य के लिये सेना का गठन किया जाता था, ठीक उसी प्रकार आधुनिक युग में भी राष्ट्र की चहुँ ओर से रक्षा के लिये जल, थल एवम् वायु सेना रहती है जो देश की सीमा की रक्षा व शान्ति व्यवस्था का कार्य करती है। युद्ध की विभिन्न पद्धतियाँ वैदिक काल से प्रचलित थीं –

रणः । दिवाक् । रिवादः । नदनुः । भरे । आक्रन्दे । आहवे । आजौपृतनाज्यम् । मुभीके । समीके । ममसत्यम् । नेमाधिता । सङ्गकाः । समितिः । समनम् । मीलहेपृतना । स्पृधः । समर्ये । समिथे । मृधः । समरणे । पृप्सु । समोहे । सङ्गमे । संयगे सङ्ग्रन्थे । संख्ये । आणौ । शूरसतौ । वाजसतौ । समनीके । पौस्ये । महाधने । वृत्रतूर्थे । इत्यादि।

निघण्टु में युद्ध (समर) के लगभग 46 पर्यायवाची पदों का वर्णन प्राप्त है। युद्ध नीतियों के अतिरिक्त विभिन्न आयुधों का वर्णन भी वैदिक वाङ्मय में प्राप्त होता है।

ऋग्वेद में भगवान् शिव को वाग्देवी द्वारा प्रदत्त आयुध धनुष का वर्णन है–

**रुद्राय धनुरातनोमि।**[96]

असुरों को पराजित करने के लिये इन्द्र का आयुध वज्र प्रसिद्ध था जो चक्राकार रुप में था।

तत्कालीन आयुध सिद्ध ऋषियों के आशीर्वाद स्वरुप राजा व अन्य योद्धाओं को प्राप्त होते थे। देश रक्षा व सत्य रक्षा के लिये इन अस्त्र–शस्त्रो का प्रयोग किया जाता था। सामान्यतः इन सभी का लक्ष्य अभेद होता था एवम् शत्रुओं को अनिवार्यतः नष्ट करने में ये आयुध समर्थ होते थे। वैदिक वाङ्मय में 'उदार' नामक एक अस्त्र का भी उल्लेख है। ऐसा माना जाता है कि इसमें जलने (विस्फोट) की भारी शक्ति होती थी, इसे अग्न्यास्त्र कहा जा सकता है–

**उदारांश्च प्रदर्शय।**[97]

**ज्याप्राश।**[98]

'पाश' नामक अस्त्र शत्रु को जकड़ कर कोई भी प्रतिक्रिया करने से कर्तव्य विहीन कर देते थे।

वरुण देव अति बलवान एवम् नैतिकता के रक्षक देवता के रुप में प्रसिद्ध हैं। ऋत् के नियमों का उल्लंघन करने वाले को वे अपने पाश में आबद्ध कर लेते थे। वरुण देवता सम्राट के रुप में वर्णित हें, जिनके प्रशासनिक प्रबन्धन में अनैतिकता व अनुशासनहीनता को कोई स्थान नहीं दिया गया था। शासन प्रबन्धन में किसी भी प्रकार व्यवधान उत्पन्न करने वाले को वे उचित दण्ड अवश्य

---

[96] ऋग्वेद 10.25.6
[97] अथर्व. 119.1
[98] अथर्व. 11.10.23

देते थे। उनकी गुप्तचर व्यवस्था भी सुदृढ़ थी। कोई भी अनैतिक कार्य करने के बाद उनकी दृष्टि से ओझल नहीं हो सकता था। उन्हें जल व वायु मार्ग का भी पूर्ण ज्ञान था।

सुदृढ़ शासन व्यवस्था का वर्णन राजा की लोकप्रियता, अनुशासन व सक्रियता का स्पष्ट संदेश प्रसारित करते हैं। राजा को अपनी समस्त शक्तियों का उपयोग करते हुए अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करना चाहिये तभी राष्ट्र रक्षा व राष्ट्र की उन्नति सम्भव है।

भारतीय संविधान के अनुसार राष्ट्रपति को सर्वोच्च सेनापति माना गया है और प्राचीन भारतीय वैदिक संस्कृति में वर्णित राजा के समान ही सर्वशक्ति सम्पन्न बताया गया है।

राजनीतिक प्रबन्धन मात्र एक राजनीतिक व्यवस्था ही नहीं है जिसमें राजनीतिक संस्थाऐं व शासन संरचनाऐं सम्मिलित हों अपितु राजनीतिक प्रबन्धन वह व्यापक क्षेत्र है जिसमें सभी प्रकार की राजनीतिक व राष्ट्रीय गतिविधियाँ सम्मिलित होती हैं।

### प्राचीन व अर्वाचीन राज्य (शासन) वर्गीकरण की अवधारणा

सनातन प्राचीन भारतीय संस्कृति के आज भी अस्तित्व में होने का प्रमुख कारण यही है कि यहाँ अपन मूल्यों एवम् मर्यादाओं को जीवित रखकर भी समय के साथ हो रहे भौतिक, प्राकृतिक व राजनीतिक परिवर्तनों को आत्मसात् कर एकात्म भाव स्थापित कर लिया गया है। सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में विभिन्न प्रकार के शासन व्यवस्था का एवम् युद्ध नीतियों का वर्णन प्राप्त है। ब्राह्मण ग्रन्थ में 8 प्रकार के राज्यों का वर्णन किया गया है।

आधुनिक राजनीतिज्ञों द्वारा गहन अध्ययन के पश्चात् सरकार अथवा शासन व्यवस्था को तीन मुख्य भागों में विभक्त किया गया है –

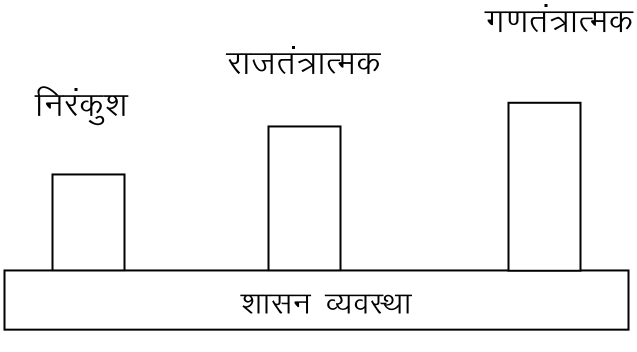

## ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णित राज्यों के प्रकार

स्वस्ति । साम्राज्यं, भौज्यं, स्वराज्यं। वैराज्यं, पारमेष्टव्यं, राज्यं, महाराज्यं, आधिपत्यमयं समन्तपर्यायी स्यात्, सार्वभौमः सार्वायुषः आन्ताद् आपराद्धात्, पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराड़ इति।[99]

**साम्राज्य** – आर्य अन्याय व अत्याचार को समाप्त करने के लिए अन्य लोगों को पराजित करते थे, उस राज्य के योग्यतम पुरुष को माण्डलिक बनाकर उत्तरदायित्व सौंप देते थे। उस राज्य में आर्यों का अपना विधान (कानून) लागू होता था एवम् शत्रु राज्य को लूट खसोट नहीं करते थे तथा अग्नि को समर्पित नहीं करते थे (आग नहीं लगाते थे)। उदाहरणस्वरुप रामचन्द्रजी ने अन्यायी, पापी व अत्याचारी रावण का वध कर पराजित किया किन्तु उनकी सेना द्वारा लंका में आग लगाने, लूटने का कोई कार्य वर्णित नहीं है अपितु स्वयं रामजी के लंका के भीतर प्रवेश तक नहीं करने का वर्णन हैं विभीषण को माण्डलिक बनाया गया और आर्य विधान के अनुसार राज्य सौंप कर स्वदेश प्रस्थान किया।

**भौज्य** – यह राज्य की प्राकृतिक सीमा दर्शाने वाला होता है। भौज्य का अर्थ एवम् नियम यह था कि प्राकृतिक सीमा में बंधे हुए देश पर ही शासक शासन करे, किसी अन्य राज्य पर बल से आक्रमण न करे। दूसरे राज्य को धर्म से विजय करे, यही भौज्य राज्य का नियम था।

**स्वाराज्य (स्वराज्य)** – प्राचीन भारतीय संस्कृति में चरित्र व आत्मा की शुद्धि पर विशेष महत्त्व दर्शाया गया है। तत्कालीन राज्य में अधिकार शक्ति एवम् वासना के लिये राज्य का विस्तार करना वर्जित था। राज्य में जनता भी चरित्रवान थी। चोर बाजारी, कालाबाजारी, भ्रष्टाचार, अपमिश्रण (मिलावट) आदि दोष नहीं थे।

---

1. ऐतरेय ब्राह्मण , अध्याय 8

वर्तमान राजनीतिक प्रबन्धकीय अवधारणा में बढ़ रही स्वार्थपरायणता व अनैतिकता के युग में स्वराज्य कालीन शासन व्यवस्था के नैतिक आदर्शों का पालन राजा तथा जनता दोनों के लिये आवश्यक है।

**वैराज्य** – इसके अन्तर्गत राजा का कोई स्थान नहीं रहता था अपितु सारी जाति एकत्रित होकर नियम बनाती व शासन करती थी। शासन का क्षेत्र बहुत छोटा होता था तथा उसका भार किसी विशेष पुरुष पर नहीं होता था।

**पारमेष्ठ्य** – इसका अर्थ परमेश्वर के राज्य से माना गया है। इसे ही रामराज्य कहा गया है। सभी परमेश्वर की संतान हैं अतः सबको समान मानकर अधिकार दिये जाते थे। ईश्वर को सर्वत्र उपस्थित मानकर शासन किया जाता था। भ्रष्टाचार आदि के दोष न होने से इसे आदर्श राज्य माना गया है।

**महाराज्य** – इसके अन्तर्गत कई छोटे–छोटे राज्य मिलाकर (जिसे संघ कहते हैं) राज्य बनाया जाता था। सभी छोटे छोटे राज्यों को समान अधिकार देकर शासन विधान निर्मित किये जाते थे, इस प्रकार यह संघ राज्य शक्तिशाली होता था।

**आधिपत्य** – इसका मुखिया अधिपति होता था, वही नियम बनाता था। राज्य कर्मचारियों को विशेष रुप से शक्ति सम्पन्न बनाया गया था किन्तु वर्तमान काल की नौकरशाही अथवा ब्यूरोक्रेसी नहीं थी।

**समन्तपर्यायी राज्य** – समन्त से अभिप्राय माण्डलिक राजाओं से होता है। किसी बड़े शासन के अधीन कई माण्डलिक होते थे। उदाहरणस्वरुप राम एवम् भरत के शासनकाल में कई सामन्त थे। ये मध्ययुगीन सामन्त राज्यों से भिन्न थे। सामन्त राज्यों में अत्याचार, अन्याय व निरंकुशता लेशमात्र भी न थी।[100]

आधुनिक युग में भी अरस्तु ने राज्य व शासन में कोई भेद नहीं किया और व्यक्तियों की संख्या व उद्देश्यों के आधार पर राज्य का वर्गीकरण किया, यही नहीं अपितु उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि शासक वर्ग के द्वारा अपनी प्रभुत्व शक्ति का अथवा राज्य सत्ता का प्रयोग लोककल्याण के

---

1. वैदिक साहित्य ले.पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी – वेदान्त शास्त्री,, पृ.390

लिये किया जाता है, मात्र स्वार्थ सिद्धि के लिये नहीं। राज्य सत्ता का लोक कल्याण के लिये प्रयोग करने वाला राज्य स्वाभाविक राज्य होता है। राज्य सत्ता का निजी स्वार्थ के लिये उपयोग करने वाला राज्य शासन का विकृत रुप है।

## तालिका

## अरस्तु का राज्य शासन का वर्गीकरण[101]

| प्रभुत्व शक्ति सम्पन्न व्यक्तियों या शासकों की संख्या | सामान्य हित में सत्ता का स्वाभाविक रुप | निजी स्वार्थ सिद्धि में सत्ता का विकृत रुप |
|---|---|---|
| एक व्यक्ति का शासन | एक तंत्र या राजतंत्र (Monarchy) | निरंकुश तंत्र या आततायी तंत्र (Tyranny) |
| कुछ व्यक्तियों का शासन | अभिजात तंत्र या कुलीन तंत्र (Aristocracy) | वर्गतंत्र, अल्पतंत्र या धनिक तंत्र (Oligarchy) |
| बहुसंख्यक व्यक्तियों का शासन | बहुतंत्र या संवैधानिक तंत्र या लोक राज्य (Polity) | भीड़ तंत्र या लोक तंत्र (Mobocracy or Democracy) |

शासन का केन्द्रीयकरण अथवा विकेन्द्रीकरण अर्थात् अधिनायक तंत्र तथा लोकतंत्र दोनों ही अवधारणाऐं शासन के लिये उपयोगी हैं तथा उनमें कई नकारात्मक तत्व भी हैं। विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति लोकतांत्रिक मूल्यों में स्नेह करने वाली पद्धति मानी जाती है। तथ्यपरक रुप में अध्ययन किया जाये तो संयुक्त रुप से सांगठनिक स्थिरता, उत्तरदायित्व, कार्यनिपुणता, निर्णय प्रभावशीलता शासन में प्रस्तुत करती है अर्थात् शासन पद्धति लोकतांत्रिक हो किन्तु चयनित नेता सर्वगुण सम्पन्न हो तथा कार्यकारिणी के सदस्यों के परामर्श द्वारा अपने स्वयं के निर्णय को राष्ट्रहित, उन्नति तथा राष्ट्रीय एकता को केन्द्र में रखकर कार्य करे। योग्य नेता अथवा अधिकारी नीति नियमों, व्यवहार

---

[101] स्रोत– साहित्य विश्लेषण, जर्नल्स एवम् संङ्गणक के आधार पर संकलित एवं विकसित

तथा कार्य संचालन में एकता स्थापित करने में समर्थ होता है। आदर्श शासन तंत्र में राजा अधिकारी, कर्मचारी एवम् जनता मिलकर अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करते हैं।

### वैदिक कालीन सुदृढ़ गुप्तचर व्यवस्था

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम।
द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद् वेद वरुणस्तृतीयः।।2।।
उतेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञ उतासौ द्यौर्बृहती दूरेअन्ता।
उता समुद्रौ वरूणस्य कुक्षी उतास्मिन्तल्प उदकेनिलीनः।।3।।
उत यो द्यामतिसर्पात् परस्यान्न स मुच्न्यातं वरुणस्य राज्ञः।
दिव स्पर्शः प्र चरन्तीदमस्य सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम्।।4।।
सर्व तद् राजा वरुणो विचष्टे तदन्तरा रोदसी यत् परस्तात।
संख्याता अस्य निमिषो जनानामक्षानिव श्वघ्नी मिनोतितानि।।5।।
ये ते पाशा वरुण सप्तसप्त त्रेधा तिष्ठन्ति विषिता रूशन्तः।
छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं यः सत्यवाद्यति तं सृजन्तु।।6।।
शतेन पाशैरभि धेहि वरुणैनं मा ते मोच्यनृतवाङ नृचक्षः।
आस्तां जाल्म उदरंश्रंशयित्वा कोशइवाबन्धः परिकृत्यमानः।।7।।
यः समम्यो वरुणो यो व्याम्यो यः सन्देश्यो वरुणो यो विदेश्य।
यो दैवो वरुणो यश्च मानुषः।।8।।[102]

अर्थात् जो वरुण सदा रहनेवाली वस्तुओं तथा नाशवान पदार्थों के ज्ञाता है। जो महिमावान पापचारी शत्रुओं पर नियन्त्रण रखते हैं और उनके कर्मों को समीप से देखते हैं, वे अतीन्द्रिय ज्ञान वाले होने के कारण सब वृतान्तों को जानने वाले हैं, जो शत्रु छल से उगने वाला, जो अदृश्य या

---

[102] अथर्ववेद 4.16.1–8

दृश्य रूप से विचरण करने वाला तथा जो कठिनता से जीवन व्यतीत करने वाला है। उसे राजा वरुण जानते हैं, क्योंकि वे सर्वज्ञ हैं, बुरे कार्य की अभिलाषा करने पर वरुण उन्हें दण्ड देने में समर्थ हैं। यह पृथिवी वरुण के वश में रहती है, यह वृहद् द्युलोक भी वरुण के वश में रहता है, पूर्व पश्चिम के दोनों समुद्र भी वरुण के दक्षिण उत्तर में पार्श्व के समान विद्यमान हैं। इस प्रकार वरुण संसार को व्याप्त करते हुए सरोवर के अल्प जल में भी विद्यमान हैं। पाप करने वाला शत्रु कुमार्ग पर चलता है तो वह वरुण के बन्धन से मुक्त भी नहीं हो सकता है। वरुण के दूत इस पृथिवी पर विचरण करते हुए सब कुछ अति सूक्ष्मता से देख सकने में समर्थ हैं। आकाश–पृथिवी के मध्य रहने वाले और अपने सम्मुख रहने वाले समस्त प्राणियों को वरुण विशेष रूप से देखते हैं। वे सभी कर्म–अकर्मो के अनुसार पाप करने वालों को जुआरी के पासों के समान उठाकर फेंकते हैं। हे वरुण! तुम्हारे उत्तम, मध्यम व अधम सात–सात पाश पापियों को बांधने में समर्थ हो तथा पुण्यात्माओं को सुख दे। तुम सत्यासत्य कर्मों को अपने विवेक से देखते हुए मिथ्याभाषियों को दण्ड दो। वरुण का सामान्य नामक पाश सामान्य रूप से रोगी बनाता है, व्याम्य नामक पाश अनेक रूप से रूग्ण बनाता है तथा संदेश्य नामक पाश समान समान देश में और विदेश्य नामक पाश विदेश में, देव पाश देवताओं में तथा मनुष्य पाश मनुष्यों पर प्रभावशाली होता है।[103]

राष्ट्रीय सुरक्षा के लिये वर्तमान में प्रयुक्त गुप्तचर व्यवस्था वैदिक काल की ही देन है। वैदिक कालीन शासन व्यवस्था में गुप्तचर विभाग अत्यन्त सक्रिय तथा सुदृढ़ था।

तत्कालीन शासन व्यवस्था में गुप्तचरों की भूमिका मात्र अपराधी की सूचना करने के लिये ही नहीं थी अपितु राज्य में सामान्य प्रजा के कष्टों का, आर्थिक स्थिति का, समस्याओं आदि से राजा को अवगत कराने का कार्य करते थे।

**बृहन्नेषामधिष्ठातधा अन्तिकादिव पश्यति।**

---

[103] अथर्ववेद, सम्पा. श्रीराम शर्मा आचार्य, प्र. डॉ. चमनलाल गौतम सांस्कृतिक संस्थान, बरेली, 1973

**य स्तायन्मन्यते चरन्त्सर्वं देवा इदं विदुः।।**[104]

उक्त उदाहरण में राजा वरुण के सुसंगठित शासन का स्वरुप मिलता है जिसमें कोई षड़यंत्र सफल नहीं होता है।[105]

वेदोक्त दिशा–निर्देश वर्तमान शासन व्यवस्था प्रक्रिया में भी राजनीतिक प्रबन्धन के उद्देश्य से अत्यधिक उपादेय हैं। भारतवर्ष पर हो रहे आन्तरिक और बाह्य आक्रमण, जन हानि, निर्दोष प्राणों की आहुति दी जा रही है। आक्रमणों की पूर्व सूचना व आक्रमणों के पश्चात् अपराधी को दण्ड न मिल पाना हमारी राजनीतिक असफलता का ही परिणाम है।

**न तिष्ठन्ति न निमिषन्त्येते देवानां स्पर्श इह ये चरन्ति।**[106]

अर्थात् देवताओं के गुप्तचर न तो किसी स्थान पर रुकते हैं और न ही नयनोन्मेष करते हैं। यही सारे तथ्य अप्रत्यक्ष रुप से राजा के संगठित व सक्रिय गुप्तचर विभाग की व्यवस्था को प्रकाशित करते हैं।

राजा वरुण ने अपनी शासन व्यवस्था को सुचारु रुप से सम्पादित करने के लिये गुप्तचर विभाग की नियुक्ति की थी। राजा वरुण स्वयं उन्हें आदेशित करता तथा उनकी गतिविधियों पर दृष्टि रखता था। तत्कालीन गुप्तचरों को 'स्पश' कहा जाता था। गुप्तचर आकाश में स्थिर होकर हजारों नेत्रों से पृथ्वी की, समस्त प्राणियों की गतिविधियों को देखते थे।

वरुण देव की शासन प्रबन्धन में सफलता पर कोई प्रश्न चिह्न नहीं था। उनका क्रोध असत्य बोलने वालों को नष्ट कर देता था तथा सत्य की रक्षा करने वाला कहा गया है। असत्यवादियों के लिये यथोचित् दण्ड का विधान भी था। सविता देव भी षड़यंत्र करने वालों का विनाश करने वाले वर्णित किये गये हैं।

---

[104] अथर्ववेद, 4.16.1

3 अथर्ववेद मे 'सांस्कृतिक तत्व – ले. राजछत्र मिश्र, पृ. 32

[106] अथर्व. 18.1.9

वैदिक एवम् उत्तरवैदिक साहित्य में सुसंगठित गुप्तचर व्यवस्था का वर्णन मिलता है। आचार्य मनु द्वारा भी गुप्तचर व्यवस्था की आवश्यकता को स्वीकारते हुए सुदृढ़ गुप्तचर व्यवस्था के साथ ही साथ शत्रु देश के गुप्तचरों से राजा को सचेत रहने की आवश्यकता भी बताई है।

**दूत संप्रेषण चैव कार्यशेषं तथैव च।**
**अन्तः पुरप्रचारं च प्रणिधीनां च चेष्टितम्।।**[107]

गुप्तचर का पद ग्रहण करने वाले के लिये यथेष्ट योग्यताओं का होना भी आवश्यक था। गोपनीय सूचनाओं को राष्ट्र की सूचनाओं को राजा तक शब्दशः प्रस्तुत करना अपने स्वामी के प्रति कर्तव्यनिष्ठा एक गुप्तचर के लिये अत्यन्त आवश्यक होता है। गुप्तचर छद्म वेश में यत्र–तत्र विचरण कर अपना कार्य सम्पादित करते थे, उन्हें प्रत्येक परिस्थिति में कार्य करना होता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी गुप्तचरों को छद्म रुप धारण कर सार्वजनिक स्थलों यथा उद्यानों, उत्सवों, हाट–बाजार, सभाऐं तथा धार्मिक स्थलों पर रहकर अपनी गुप्तचर विद्या द्वारा शत्रुओं के भेद को अपने सम्राट को संप्रेषित करने का वर्णन प्राप्त है।

महाभारत में भी भीष्म ने राजा के लिये गुप्तचरों को आवश्यक स्वीकार किया है

**गावो गन्धेन पश्यन्ति, वेदैः पश्यन्ति वै द्विजाः।**
**चारैः पश्यन्ति राजानश्चक्षुभ्यो इतरे जनाः।।**
**प्रज्ञा मेधाविनो दक्षाः दान्ताः शूराः बहुश्रुताः।**
**कुलीनाः सत्वसम्पन्नाः युक्ताः सर्वेषु कर्मसु।।**[108]

वे कहते हैं कि गुप्तचर राजा के चक्षु होत हैं। गायें सूँघकर देखती हैं, अर्थात् सूँघकर खाद्य वस्तुओं का निर्धारण करती हैं, विद्वान ब्राह्मण, शास्त्र रुपी चक्षुओं से संसार को देखता है, राजा गूढ़

---

[107] मनु. 7.153
[108] महा. 86.17

पुरुषों द्वारा देखता है तथा साधारण जन सामान्य चक्षुओं द्वारा सामान्य वस्तुओं को देखते हैं। भीष्म अत्यन्त ज्ञानी व्यक्ति थे तथा योग्य गुप्तचर के लक्षणों को परिभाषित किया है।

भारतीय साहित्य में स्त्रियों तथा पशुओं को भी गुप्तचर के रुप में नियुक्त करने का वर्णन प्राप्त है। राजा का कर्तव्य होता है कि वह गुप्तचरों से सूचना प्राप्त कर, गुप्त मन्त्रणा करें किन्तु दण्ड देने के विषय में उचित व अनुचित का निर्धारण स्वयं करे। ये गुप्तचर राज्य में कर व्यवस्था में चोरी करने वालों का भी पता लगाते थे।

वर्तमान काल में भी गुप्तचर व्यवस्था अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अमेरिका जैसे शक्तिशाली सैन्य संगठन व सुदृढ़ गुप्तचर व्यवस्था के होते हुए भी वर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर होन वाले आतंकी हमले जिनमें कई निर्दोष व्यक्तियों को अपने प्राण गवाँने पड़े, कहीं न कहीं गुप्त सूचना तंत्र में त्रुटि का ही परिणाम है।

भारतवर्ष में भी शत्रु राष्ट्रों की घुसपैठ तथा भीतर से भ्रष्टाचार रुपी कर चोरी, रिश्वतखोरी जैसी समस्याओं की जड़ में राजनीतिक प्रबन्धन की किंचित असफलता दृष्टिगोचर होती है। शासन व सेना ही नहीं अपितु यह सम्पूर्ण भारतवासियों का उत्तरदायित्व है कि वे स्वयं को नैतिक रुप से सुदृढ़ बनाकर शत्रुओं का सामना करे।

## वैदिक संहिताओं में राष्ट्रीयता–प्रबन्धन

**संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।**

**देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।।**

**समानो मन्त्रः समिति समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।**

**समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन तो हविषाजुहोमि।।**

**समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।**

**समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।**[109]

राष्ट्रीयता की वर्तमान अवधारणा वैदिक वाङ्मय में प्रकाशित राष्ट्रीयता से अनेक अर्थों में संयुक्त है। सामाजिक सन्दर्भों में राष्ट्रीयता को जिस संकुचित रूप में परिभाषित किया गया है वे मुख्यतः भाषा भौगौलिक उपादान, धार्मिकता अथवा राजनैतिक उद्देश्यों पर आधारित होते हैं। वर्तमान स्वार्थपरक राष्ट्रीयता की अवधारणा की स्पष्ट रूप से समालोचना करते हुए **हमकोहन**[110] कहते हैं कि एक राष्ट्रीयता को जाति के तत्वों पर आधारित करना और कुछ नहीं, बल्कि पिछड़ी सभ्यता की ओर उन्मुख होना है। राष्ट्रीय श्रेष्ठता भले ही कल्पित कथा हो किन्तु वह बिखरे हुए लोगों को संगठित करती है, एकता व संगठन की भावना का संचार करती है। राजनीतिक विज्ञान के प्रख्यात विचारक **रोज**[111] ने राष्ट्रीयता को एक भावना के रूप में वर्णित करते हुए कहा है कि राष्ट्रीयता हृदयों का ऐसा मिलन है जो मिलने के पश्चात् कभी विलग नहीं होते। वह एक आध्यात्मिक धारणा है।

उपर्युक्त लक्षणों के परिप्रेक्ष्य में वैदिक संहिताओं में जहाँ राष्ट्रीयता के विचार प्रस्फुटित हुए हैं, को केन्द्र में रखकर संहिताओं में प्राप्त राजकीय विधियों से सम्बद्ध अंशों की गवेषणा का प्रयास किया गया है। वैदिक वाङ्मय में सर्वत्र उदात्त भावनाओं का पल्लवन ही दृष्टिगोचर होता है। भारतीय चिन्तन पद्धति में यज्ञों को संस्था के रूप में परिभाषित किया गया है, जहाँ अनेक विचारों, सिद्धान्तों भावनाओं और जीवन पद्धतियों का जन्म हुआ है। वैदिक वाङ्मय में राष्ट्रीयता का विचार भी यज्ञ रूपी उर्वरा भूमि के गर्भ से ही प्रस्फुटित हुआ। अथर्ववेद में यज्ञ को राष्ट्र के धारक सात तत्वों में सम्मिलित किया है–

**सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।।**[112]

---

[109] ऋग्वेद 10.191.1–4
[110] राजनीति– एस. सी. सिंह, त्यागी प्रकाशन, मेरठ पृ 104
[111] वही, पृ 105
[112] अथर्ववेद, 12.1.1

श्रीमद्भगवत् गीता में भी स्पष्ट है कि शास्त्र सम्मत विधि से सम्पादित कार्य यज्ञ की फल प्राप्ति में सहायक है। मानव को अपने जीवन को शुद्ध बनाने के लिए विधि विधानों का पालन करना चाहिये। काम,क्रोध व लोभ वश स्वेच्छापूर्वक कार्य करने से मानव जीवन में सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। मनुष्य योनि में जीव बुद्धिमान बने और सर्वोच्च पद को प्राप्त करने के लिए शास्त्रोक्त विधिपूर्वक नैतिक सिद्धान्तों का पालन करता रहे तो वह श्रेष्ठता को प्राप्त करेगा।

वेदों में करणीय तथा अकरणीय कर्मों के लिए आदेशित किया गया है। शास्त्रों के नियमों का पालन किये बिना सिद्धि प्राप्त करना लगभग असम्भव है, राजनैतिक प्रबन्धन के क्षेत्र में भी वेदोक्त विधि विधानों का पालन आवश्यक है, जिससे राष्ट्रीय एकता व उन्नति का मार्ग प्रशस्त होगा। मानव समाज को पतनोन्मुख करने का प्रमुख कारण वैदिक नियमों की अवहेलना ही है। मानव समाज के कतिपय दोष उसे वेद विरूद्ध जीवन की ओर अग्रसर करते हैं। वर्तमान राजनैतिक चरित्रों के पतन से सम्पूर्ण राष्ट्र अधःपतन की ओर अग्रसर है। ऐसे समय में वेदोक्त मार्ग ही हमें श्रेष्ठता के शिखर पर आसीन कर सकता है।

राष्ट्रीयता एक भावनात्मक विचार है। राष्ट्रीय एकता एक ऐसी भावना है जो मानव के अन्तःकरण को स्पर्श करती है। व्यक्ति को अपनी वैयक्तिक सीमाओं से परे सार्वजनिक उदात्त भावना की ओर प्रेरित करने वाली भावना है और यही भावना मनुष्य को मनुष्यत्व प्रदान करती है–

**रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचम्राजसु नमस्कृधि।**
**रुचं विश्येषु शुद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम्।।**[113]

सामूहिक कल्याण की भावना सभी वर्गो के मध्य सहसम्बन्ध का विवेचन सर्वत्र पोषित है। भौगालिक उपादानों की चर्चा राष्ट्रीयता की सिद्धि में होने पर वैदिक वाङ्मय में अनेक संवेदनशील सूक्त द्रष्टव्य हैं।

---

[113] शु.यजु.18.48

प्राकृतिक धरोहर के प्रति वरेण्य भाव प्राकृतिक शक्तियों की उपासना तथा सम्पूर्ण विश को सुप्रबन्धित संचालित करने वाले प्रजापति की भी आराधना की गई है। चयनित राजा सभी प्राकृतिक व अप्राकृतिक शक्तियों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए आशीर्वाद की अभिलाषा रखते थे। यजुर्वेद के अठारहवें अध्याय में यज्ञ के द्वारा भौगोलिक उपादानों यथा वनस्पतियाँ, भूमिगत खनिज, व्रीहि, अरण्य, तिल, मसूर, गोधूम इत्यादि को यज्ञ के प्रसाद द्वारा राष्ट्र की उन्नति के लिए प्राप्त करने की आकांक्षा व्यक्त की गई है। साथ ही भौतिक सुखों की प्राप्ति के साधन के रूप में वित्त को भी महत्त्व दिया गया है। नैतिक मूल्यों से सम्बद्ध सत्य, श्रद्धा, पुण्य, अमृत, आनन्द, धैर्य, कल्याण, क्षेम, ज्ञान आदि से अभिभूत होने की कामना भी की गई है। समस्त दैवीय शक्तियों तथा प्राकृतिक शक्तियों यथा इन्द्र, अग्नि, सोम, सविता, बृहस्पति, पूषा, सरस्वती, मित्र, वरुण, मारूत इत्यादि को भी वह आत्मसात करना चाहता है। यज्ञ की सार्वभौम सत्ता के साथ ही भौगोलिक उपादानों और मानवमात्र की अपूर्णता से पूर्णता की ओर प्रेरित करने की अभिलाषाएँ एकाकार हो जाती है और यही राष्ट्रीयता की भावना का उज्ज्वल निदर्शन है। अथर्ववेदीय मन्त्र भी इस तथ्य को पुष्ट करते हैं, जहाँ सम्पूर्ण सृष्टि को यज्ञ का ही आशीर्वाद बताया गया है।[114]

राष्ट्र की स्थिरता के लिए वरुण, बृहस्पति, इन्द्र, अग्नि आदि वैदिक देवताओं की शासक अधिपति अथवा राजा के रूप में स्तुति की गई है। देवताओं से राष्ट्र की स्थिरता की कामना के परोक्ष में यही उद्देश्य समाहित है कि राष्ट्र दैवीय उपलब्धि ही है–

**ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः।**
**ध्रुवं त इन्द्रश्चग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम्।।**[115]

---

[114] अथर्ववेद, 11.7
[115] ऋग्वेद, 10.173–5

राजा को भी ईश्वर का प्रतिनिधि ही स्वीकार किया गया है तथा कहा गया है कि ब्रह्मचर्य एवम् तपस आचरण द्वारा ही राजा राज्य की रक्षा करने में समर्थ हो सकता है तथा समस्त देवों का कृपापात्र हो सकता है।

**ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति।**[116]

यज्ञ संस्था प्राचीन भारतीय संस्कृति का मूलाधार है। समष्टिगत प्रबन्धन तथा समवेत अभ्युदय के लिए यज्ञों में की गई राष्ट्रीय प्रार्थना, राष्ट्रवासियों के लिए, समस्त भौगोलिक सम्पदाओं के लिए तथा पर्यावरणीय पवित्रता के लिए समर्पित है—

**आ बह्मन् ब्रह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे**
**राजन्यः शूर इषव्योऽति व्याधी महारथो जायतां**
**दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा**
**जिष्णू रथेष्ठाः सभेया युवस्य यजमानस्य वीरो**
**जायतां निकामेनि कामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो**
**न औषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्।।1।।**[117]

अर्थात् हमारे राष्ट्र में यज्ञ व अध्ययनशील ब्राह्मण उत्पन्न होवें। राष्ट्र शासक व राष्ट्रवासी अपने—अपने कर्मों में अग्रणी हो, क्षत्रीय शूर, लक्ष्यवेधी, धनुषबाणधारी तथा महारथी उत्पन्न होवें, पशुसम्पदा फलेफूले, पर्याप्त वृष्टि व भरपूर अन्न उत्पन्न हो, गृहणियाँ गुणवती हों, परमात्मा हमारे योगक्षेमं को सिद्ध करें।

तत्कालीन राज्य व्यवस्था में राष्ट्र का प्रत्येक निवासी जो अपने राष्ट्र के प्रति व अपने कार्य (व्यवसाय) के प्रति समर्पित है राष्ट्रीय कहलाने का अधिकारी था। तत्कालीन आर्य स्वयं पर तथा अपने राष्ट्र पर गौरवान्वित थे। राष्ट्र के समस्त वर्गों का समान सम्मान व महत्व ही एक राष्ट्र की

---

[116] अथर्ववेद, 11.5.17
[117] शु.यजु. 22.22

सम्पूर्णता व प्रगति का द्योतक है। यज्ञ की पूर्णता के लिए समाज के प्रत्येक वर्ग का अपना योगदान होता है। ऐसा वर्णन शुक्ल यजु. के 30 वें अध्याय में विस्तृत रूप में प्राप्त होता है। कतिपय वर्ग जिनका उल्लेख प्राप्त होता है वे इस प्रकार है—वणिक्, ब्राह्मण, क्षत्रिय, व्यापारी, श्रमिक, तस्कर, कायर, नपुंसक, लुहार, सूत, शैलूष, सभासद, वाचाट, विदूषक, रथकार, सूत्रधार, जौहरी, किसान, नर्तक, वनरक्षक, भिखारी, दुःखी, किन्नर, रङ्गरेज, पहरेदार, सेवक, बाँझ स्त्री, चर्मकार, वृद्धा, भील, धोबी, कुम्हार, रसोइया, वैश्या, मूर्तिकार, माली, वैद्य, विकलाङ्ग, ज्योतिषी, महावत, सईस, गोपालक, महाजन, लकड़हारा, जुआरी, निषाद, बहेलिया, आयुध निर्माता, मुखिया इत्यादि।

इस प्रकार पुरूषमेघ यज्ञ में उच्च प्रबुद्ध वर्ग से समाज के निम्न —निकृष्ट वर्ग की भी उपस्थिति तत्कालीन राष्ट्र व्यवस्था तथा राष्ट्रीयता प्रबन्धन को स्पष्टतः प्रकाशित करती है। राष्ट्रीयता के निर्धारण में भाषा का महत्त्व भी अविस्मरणीय है। वैदिक भाषा देव वाणी संस्कृत अपने मूल रूप में वर्षों पर्यन्त आज भी सुरक्षित है तथा अनेक भाषाओं की जननी भी है। इस तथ्य को वैज्ञानिक रूप से भी प्रमाणित किया जा चुका है। वैदिक काल से अद्यपर्यन्त भारतीय संस्कृति में अनेक परिवर्तन हुए किन्तु भारतीय वैदिक सांस्कृतिक परम्परा की अविचल धारा व चिन्तन शैली अद्यपर्यन्त अनवरत बह रही है। यही वैदिक राष्ट्रीयता प्रबन्धन की अवधारणा है।

## वैदिक एवम् अर्वाचीन राष्ट्रीयता तथा विश्वबंधुत्व की अवधारणा

भारतवर्ष एक विशाल देश है जो छोटे—छोटे राज्यों में विभाजित है। कई राज्य तो इतने विशाल हैं कि कई देश उनके सामने छोटे दिखाई देते हैं। भारत एक बहुभाषीय एवम् बहुधर्मी देश है जहाँ सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, भौगोलिक रीति—रिवाजों में भिन्नता दिखाई देती है किन्तु फिर भी उनमें एक राष्ट्रीय भावना है, यही अनेकता में एकता अथवा विश्वबंधुत्व की भावना है। पाणिनि ने उनके विश्वप्रसिद्ध ग्रन्थ अष्टाध्यायी में हमारे देश को भाषा के माध्यम से जोड़कर राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने का प्रयास किया है। आधुनिक युग में धर्म की संकुचित भावना ने देश की राष्ट्रीय एकता

को पतन की ओर धकेल दिया है। वर्तमान भौतिकवादी युग में जनसाधारण को भारतीय प्राचीन संस्कृति से अवगत कराकर यह स्पष्ट करना होगा की धर्म 'सर्वजन हिताय' होता है, जिस धर्म में जनकल्याण की भावना नहीं होती, वह वास्तव में धर्म नहीं अपितु स्वार्थी मस्तिष्क की उपज है जो भोले भाले जन मानस को पथभ्रष्ट करता है। इस तथ्य को विशेष महत्व देते हुए भारतीय संविधान निर्माताओं ने भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया है। आपसी सहयोग तथा समन्वय की भावना द्वारा एकता की भावना को दृढ़ किया जा सकता है। प्रसिद्ध प्रबन्ध वैज्ञानिक टैरी का कथन है कि प्रशासनिक संगठनों में समन्वय की अवधारणा सभी सम्बद्ध विभागों का पारस्परिक संबंध है जो कार्यों को लक्ष्य रुप में निर्धारित कर संपादित करते हैं।

कवि कालिदास ने भी भारतभूमि का वर्णन करते हुए उसे एक अविभाज्य इकाई के रुप में स्थापित किया है–

**अस्त्युरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नागाधिराजः**
**पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः।।**

इस श्लोक में भारतभूमि की विशालता, अखण्डता एवम् सुदृढ़ता के दर्शन होते हैं। विशाल भारत के उत्तर में हिमालय अपनी दोनों भुजाओं से पूर्वी और पश्चिमी समुद्र का स्पर्श इस प्रकार करता है मानों पृथ्वी का मानदण्ड हो।

पुराणों में भी भारतीय राष्ट्रीय चेतना व सांस्कृतिक एकता का वर्णन किया गया है। भारतवर्ष को एक पूर्ण इकाई के रुप में वर्णन किया गया है। विष्णुपुराण का यह कथन अनेक पुराणों में भी वर्णित है भारत की सीमाओं का वर्णन करने का मूल उद्देश्य प्राचीन भारतभूमि के प्रति राष्ट्रीय चेतना व एकता का प्रतीक है–

**उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।**
**वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः।।**

भारतीय इतिहास का गंभीरता पूर्वक अध्ययन व मनन करने पर ज्ञात होता है कि समय–समय पर देश की भौगोलिक सीमाऐं फैलती और सिकुड़ती रहीं किन्तु उसकी राष्ट्रीय एकता जस की तस बनी रही। भारतीय राष्ट्रीय भावना वैदिक काल से चली आ रही है, यहाँ तक कि देवतागण भारतवासियों को धन्य मानते हें क्योंकि भारतवर्ष स्वर्ग व मोक्ष प्राप्त करने का एक आनंददायी मार्ग मानता है। विष्णुपुराण 2.3, 3.5 में इसका वर्णन अत्यन्त सुन्दर ढंग से श्लोक रुप में प्राप्त है–

**गायन्ति देवाः खलु गीतिकानि धन्यास्तुते भारतभूमि भागे।**
**स्वर्गापदवर्गा स्पदमार्ग भूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।।**

भारतवर्ष वैदिक काल से ही राष्ट्रीय भावना के साथ–साथ अन्तर्राष्ट्रीय अथवा विश्वबन्धुत्व की भी भावना का महत्त्व अनुभव करता रहा। यदि वैदिक शिक्षा का सम्यक अध्ययन करें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वेद मूल रुप से शान्ति दूत है। अनेक प्रकार के शान्ति मन्त्र वैदिक यज्ञों का महत्वपूर्ण अंग रहा है। वैदिक ऋषियों ने मनुष्य ही नहीं अपितु प्रकृति को शान्त रहने के लिये अनेक शान्ति मन्त्रों की रचना की है।

'**यद् भद्रं तन्न आसुव, धियो योनः प्रचोदयात्,**' इत्यादि मन्त्रों में 'नः' शब्द का प्रयोग सम्पूर्ण विश्व के लिये कल्याण की भावना की परिपुष्टि करता है।

अन्ततः हम यही कह सकते हैं कि अर्वाचीन राजनीतिक प्रबन्धन को शाश्वत भारतीय संस्कृति में निर्दिष्ट राजनीतिक प्रबन्धन के दिशा–निर्देशों की तथा उनके दिये नैतिक मूल्यों को आत्मसात् करने की महती आवश्यकता है।

**दिव स्वाहा।।1।। पृथिव्यै स्वाहा।।2।।**
**अन्तरिक्षाय स्वाहा।।3।। अन्तरिक्षाय स्वाहा।।4।।**
**दिवे स्वाहा।।5।। पृथिव्यै स्वाहा।।6।।**
**सूर्यो में चक्षुर्वातः प्राणोन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम्**
**अस्तृतो नामांहमयमस्मि स आत्मानं नि दधे**
**द्यावापृथवीभ्यां गोपीथाय।।7।।**
**उदायुरुद्ब्लमुत् कृतमुत् कन्यामुन्मनोपामुदिन्द्रियम्।**
**आयुष्कृदायुष्पत्नी स्वधावन्तौ गापा मे स्तं गोपायतं मा।**
**आत्मसदौ मे स्तं मा मा हिंसिष्टम्।।8।।**[118]

अर्थात् आकाश के अधिष्ठाता देव के लिये स्वाहा।।1।। पृथिवी के अधिष्ठाता देव के लिये स्वाहा।।2।। अन्तरिक्ष के अधिष्ठाता देव के लिये स्वाहा।।3।। अन्तरिक्ष देवता के निमित्त स्वाहा।।4।। स्वाहा के लिये स्वाहा।।5।। पृथिवी के लिये स्वाहा।।6।। सूर्य मेरे चक्षु, वायु प्राण, अन्तरिक्ष आत्मा और पृथिवी देह है। अनाच्छादित नाम वाला मैं द्यावा–पृथिवी से रक्षा प्राप्त करने के निमित्त उनकी शरण में जाता हूँ।।7।। तुम मेरी आयु, बल, कृत्या, बुद्धि और इन्द्रियों को बढ़ाओ। हे आयुष्कारक एवम् रक्षक द्यावा–पृथिवी। तुम स्वधायुक्त मेरे रक्षक हो। नष्ट होने से मेरी रक्षा करो।।8।।

पर्यावरण का अर्थ है प्रकृति। वैदिक वाङ्मय के अनुसार मनुष्य, प्रकृति एवम् पृथिवी के साथ अविच्छिन्न रुप से संयुक्त है। सम्पूर्ण सृष्टि का संचालन किसी महान शक्ति के द्वारा नियोजित एवम् सृजित है। वैदिक कालीन मन्त्रदृष्टा ऋषियों ने प्रकृति के भौतिक ही नहीं अपितु उसके दैविक, आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक स्वरूप का भी गहन अध्ययन किया। वैदिक वाङ्मय में प्रकृति को

---

[118] अथर्ववेद 5.2.9

देवतुल्य स्थापित कर उसका आव्हान तथा उपासना की गई। वैदिक कालीन चिंतन एवम् दर्शन, प्रक्रिया में मनुष्य मात्र के चहुँ ओर आवृत्त पर्यावरण का विस्तृत अध्ययन किया गया एवम् उसके रक्षण व पोषण हेतु अनेक दिशा–निर्देश प्राप्त हैं।

परि+आ वृ + ल्युट्। परि तथा आ उपसर्गपूर्वक 'वृ' धातु से 'ल्युट्' प्रत्यय के योग से यह पर्यावरण शब्द निष्पन्न है।[119] वैदिक वाङ्मय में पर्यावरण की परिभाषा ही नहीं अपितु पर्यावरण संरक्षण की चर्चा प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रुप से स्थान–स्थान पर की गई है। पर्यावरण एवम् मनुष्य अन्योन्याश्रित है। वैदिक कालीन मन्त्रदृष्टा ऋषियों ने प्रकृति के अंक में ही गूढ़ साधना की व प्रकृति के रहस्य को जाना। प्रकृति के मनोहारी स्वरुप के दर्शन ही नहीं किये अपितु पर्यावरण से मानवमात्र के होने वाले लाभ व आवश्यक पूर्ति का भी गहन अध्ययन किया। नदियाँ, पर्वत, वृक्ष, वनस्पतियाँ, सागर, पशु–पक्षी एवं मनुष्य आदि इन सभी के शुभ संयोग से ही एक स्वस्थ पर्यावरण का निर्माण होता है। वैदिक वाङ्मय में यत्र–तत्र प्रकृति के क्रिया–कलापों का सुरम्य वर्णन प्राप्त होता है। प्रकृति, पर्यावरण अथवा वातावरण ये सभी शब्द अपने भीतर एक व्यापक अर्थ को समेटे हुए हैं। वनस्पति, जल, वायु, आकाश, जीव–जन्तु, पर्वत, सविता आदि सभी के संयोग से पर्यावरण की रचना हुई। प्रकृति के प्रत्येक तत्व में परम पुरुष परमात्मा का अंश विद्यमान है और प्रकृति की प्रत्येक जड़ व चेतन वस्तु में ब्रह्मा के दर्शन कर उसे देवतुल्य आदृत कर वंदना वेदों में की गई है। वेदों में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण वैदिकोत्तर संस्कृति भी पर्यावरण संरक्षण का संदेश ही प्रसारित करती है। मनुष्य के द्वारा प्रकृति का आदर, सम्मान व रक्षण ही मनुष्य के उज्ज्वल व स्वस्थ भविष्य का द्योतक है।

वर्तमान समय में हो रहे भूमण्डलीकरण (Global Warming) प्रकृति के रुप में परम पिता द्वारा दी गई अनन्त संपदा के साथ खिलवाड़ का ही परिणाम है। प्रकृति के वर्तमान पतन की ओर

---

[119] वेदविद्या, त्रैमासिक शोध पत्रिका अङ्क 3, 4, तृतीय वर्ष ले. डॉ. शैलजा सिंह पृ. 144

अग्रसर इस व्यवस्था का उत्तरदायी स्वयं मनुष्य ही है। मनुष्य ने अपनी अनन्त लालसाओं के पराभूत होकर ही प्रकृति का अत्यधिक शोषण किया है। अपने सभी आविष्कारों तथा उपकरणों को जिन्हें हम बनाते हैं, उन सभी के निर्माण में जिन घटकों का अथवा संसाधनों का प्रयोग किया जाता है, वे सभी प्रकृति द्वारा प्रदत्त हैं। प्रकृति की प्रत्येक देन के लिये इसे पूर्ण सम्मान अथवा श्रेय देने की आवश्यकता है। यह मात्र मनुष्य का मिथ्या अभिमान ही है कि वर्तमान भौतिक उन्नति मात्र मनुष्य के प्रयासों द्वारा ही सम्भव है क्योंकि वह विचारशक्ति, बुद्धि, प्राकृतिक संसाधन जिनके द्वारा यह उन्नति संभव हुई है, वह सबकुछ सोचने–विचारने का मस्तिष्क भी ईश्वर द्वारा प्रदत्त है अन्यथा मनुष्य मनुष्य न होकर पशुवत ही था।[120]

वर्तमान समय में विभिन्न संचार साधनों के द्वारा मानव मात्र को पर्यावरण संरक्षण के प्रति सचेत किया जा रहा है। पर्यावरण प्रदूषण को लेकर विश्व में जागरुकता बढ़ती जा रही है। वृक्षों व वनों की अनवरत अंधाधुंध कटाई, भूगर्भीय सम्पदा के अत्यधिक उत्खनन आदि से होने वाले दुष्प्रभाव एवम् वातावरण में होने वाले अवांछित परिवर्तनों की ओर सजग दृष्टि एवम् पर्यावरण संरक्षण के अथक प्रयासों की आवश्यकता है।

श्रीलता मेनन (पर्यावरणविद्) के अनुसार वन एवम् पर्यावरण प्रबन्धन की अत्यधिक आवश्यकता है – 'सम्प्रति जंगलों को प्रमाणित करने वाली कई एजेंसियाँ कार्यरत हैं और जल्द ही भारत सरकार उन कम्पनियों को स्वयं प्रमाण पत्र देगी जो अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये लकड़ियों की वैधानिक कटाई करती हैं।'[121]

यदि हम अपने प्राकृतिक संसाधनों एवम् पर्यावरण का सम्यक् प्रबन्धन कर सकें तो प्रकृति हमारी आवश्यकता की प्रत्येक वस्तु हमें निरन्तर प्रदान कर सकेगी। परन्तु यदि मनुष्य प्रकृति के विषय में स्वयं की मौलिक आध्यात्मिक स्थिर विचारधारा नहीं रखते हैं, वे यदि असीमित मात्रा में

---

[120] Environmentalism according to Vedic view by Stephen Kneep.
[121] B.St. By Shrilata Menon - 14/7/09

प्राकृतिक संपदा का शोषण करते रहेंगे तो ये सभी प्राकृतिक संसाधन शनैः शनैः समाप्त होने लगेंगे। पर्यावरण एवम् प्रकृति की पर्याप्त एवम् समुचित सुरक्षा के अभाव में अनेकों जैविक प्रजातियाँ जो अनन्त काल से अपनी विशेषताओं सहित वर्तमान समय में अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये संघर्षरत हैं, लुप्त हो जायेंगी।

भविष्य में होने वाले अज्ञात एवम् अकल्पनीय परिवर्तनों के विषय में ऋषियों को पूर्ण ज्ञान प्राप्त था। इस हेतु उन्होंने यत्र–तत्र दिशा–निर्देश प्रस्तुत किये हैं। प्रकृति एवम् उसके क्रिया कलापों का सुरम्य वर्णन वेदों में प्राप्त होता है। प्रकृति के कार्य कलापों को एक नटी की संज्ञा दी गई है। प्रकृति नटी के कार्यकलाप सुप्रबन्धित विधि से नियमित रुप से चलते हैं, उनमें किसी व्रत का पालन करने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। वैदिक वाङ्मय के अनुसार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक निश्चित व्यवस्था के अधीन कार्यरत है। इन्द्र, वरुण, सविता, अग्नि, वायु, हिरण्यगर्भ आदि सभी देवता विश्व के इसी नियम का बिना किसी प्रमाद के पालन करते हैं।[122]

ब्रह्माण्ड की इसी सुप्रबंधित कार्य प्रणाली को ऋग्वेद में 'ऋत' संज्ञा से अलंकृत कर मानवीकरण किया गया है। इस सम्पूर्ण व्यवस्था में कहीं कोई कुप्रबन्धन, कोई अव्यवस्था दृष्टिगोचर नहीं है। सर्वत्र एक नियमबद्धता विद्यमान है और यही सिद्धांत बौद्धिक प्रगति तथा विज्ञान की आधारशिला है। बुद्धि की इसी निर्णयन क्षमता के आधार पर मानवमात्र का अनंत विकास संभव है।

अग्नि, उषा, सविता, वरुण, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, वृक्ष, वनस्पति, जन्तु आदि शक्ति रुप देवता तथा प्रकृति से परे विद्यमान देवता भी ऋत तत्व के अधीन हैं। वैदिक ऋचाओं में वर्ण्य ये समस्त देवता और उनकी सुप्रबन्धित कार्य निष्पादन पद्धति को अध्ययन कर यह स्पष्ट हो जाता है कि समस्त वैदिक देवता परस्पर अविरोध भाव से ही नहीं अपितु उन्नायक भाव से भी सम्पूर्ण चराचर जगत् के

---

[122] वैदिक संस्कृति का विकास, ले. लक्ष्मण शास्त्री जोशी (1957) प्रकाशक, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्रा. लि0 मुम्बई पृ. 33

शाश्वत् नियमों का सत्य व ऋत का पालन व सम्पूर्ण विश्व को एकात्म भाव से प्रबन्धित करते हुए अपने कर्त्तव्यो का निर्वहन करते हैं–

**'देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।'**[123]

वैदिक वाङ्मय में वर्णित व आराधित देवतुल्य प्रकृति का वर्तमान मनुष्य शोषण कर प्रकृति को आदर देने तथा उसके संसाधनों के उपभोग में सहभागिता एवं परस्पर सहयोग के स्थान पर यदि उनके लिये परस्पर संघर्ष करेंगे तो यह सम्पूर्ण पर्यावरण, मानव जाति ही नहीं अपितु उस परम पिता के लिये भी अत्यन्त कष्टकारी सिद्ध होगा।

सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति में प्रकृति को देवत्वरुप में प्रतिष्ठित किया गया है यथा – जलदेवता (वरुण देवता), अग्नि देवता, सविता देवता, वृक्ष देवता, गौ, पर्वतराज, गरुड़ देवता, मयूर देवता। सम्पूर्ण प्रकृति को देवतुल्य प्रतिष्ठित कर यह स्पष्ट निर्देश दिये हैं कि मानवमात्र का कल्याण प्रकृति के साथ सायुज्य स्थापित करने में है न कि प्रकृति का निरादर, अवहेलना व शोषण करने में। वैदिक ऋचाओं के अध्ययन से पर्यावरण प्रबन्धन, प्रकृति तथा मनुष्य की समीपता व एकरुपता का भी ज्ञान होता है –

**इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।**[124]
**एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहु।**[125]

अर्वाचीन समय में पर्यावरण प्रदूषण वैश्विक समस्या बनकर सम्पूर्ण जगत् में विकराल रुप में व्याप्त है। मानवमात्र ही नहीं सम्पूर्ण जड़ व चेतन जगत् इस भयावह समस्या से त्रस्त है। विभिन्न माध्यमों से कल्याणकारी संस्थाओं द्वारा, वैज्ञानिकों द्वारा, समाज सेवियों द्वारा तथा पर्यावरणविदों के द्वारा सचेत किया जा रहा है कि यदि हमें पृथ्वी का अस्तित्व बनाए रखना है तो पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाना होगा।

---

[123] ऋग्वेद्, 10.191.2
[124] अथर्व 9.10.28
[125] ऋग्वेद 1.164.46

वैदिक कालीन मानव सभ्यता भी प्रदूषण रुपी दानव के अस्तित्व से अथवा भविष्य में इसके रुप से परिचित थी। वैदिक युग में भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से समाज का ध्यान पर्यावरण प्रदूषण की ओर आकृष्ट किया गया था। भूमि मातृ स्वरुपा थी और उस सस्य श्यामला भूमि की प्रत्येक वस्तु की रक्षा करना, उसका आदर करना मानवमात्र का कर्तव्य था। पूजन–वन्दन–अनुशासन, सदाचरण आदि के द्वारा उसे जीवन्त रखा गया था–

**यस्य भूमिः प्रमाऽन्तरिक्षमुतोदरम्।**
**दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।।**[126]

वैदिक युग में पर्यावरण के मूलतः प्रत्येक पक्ष का चित्रण प्राप्त है। पर्यावरण प्रदूषण तथा स्वस्थ पर्यावरण से मानव जाति के हितों का भी वर्णन प्राप्त होता है। यथा– वायु, जल, पशुधन, औषधि, वृक्ष, वर्षा, वन, पृथ्वी।

### जल प्रबन्धन

वैदिक दर्शन के सिद्धान्त वर्तमान में भी उपादेय हैं तथा वैज्ञानिकों द्वारा अपनाए भी जा रहे हैं। यथा जल मात्र भौतिक सत्व अथवा अस्तित्व ही नहीं अपितु वैदिक काल से ही जल की मान्यता एक मौलिक आध्यात्मिक प्रतीक के रुप में रही है। अनादिकाल से ही जल को सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक शुचिता एवम् मानव शरीर के प्रदूषण की स्थिति के मापदण्ड के रुप में मान्यता दी गई है।

सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति में जल को दिये गये महत्व के प्रमाणों की पुष्टि प्राचीन ग्रंथों में जल के उपयोग एवम् उल्लेख के संदर्भों से प्राप्त होती है –

**यद् रिप्रं शमलं चकृम यच्च दुष्कृतम्।**
**आपो मा तस्माच्छुम्भनवग्नेः संकसुकाच्च यत्।।**[127]

---

[126] अथर्व 10.7.32
[127] अथर्व 12.2.40

अर्थात् हम जिस पाप को, जिस मलिन पाप को और दुखदायक फल वाले पाप को कर चुके हैं, उन पापों से और शव भक्षक अग्नि स्पर्श के दोष से जल मुझको शुद्ध करे।

जल को सभी अशुद्धियों को दूर करने वाला, समस्त पापों का शमन करने वाला तथा समस्त विकारों को दूर करने वाला औषधि स्वरुप देवता माना गया है।

वर्तमान जल संकट के युग में यदि वैदिक वाङ्मय की ओर पुनःदृष्टिपात न किया गया तो स्थिति सर्वथा भीषण होती जाएगी। जल का अपव्यय व निरादर प्रकृति के साथ निरादर भाव सम्पूर्ण मानव जाति को महापाप व विनाश की ओर ले जाएगा।

जल को वैदिक वाङ्मय में वरुण देव के रुप में प्रतिष्ठित किया गया है। वरुण देव को समस्त देवों के मध्य विशिष्ट स्थान प्राप्त था। वरुण अर्थात् जल देव का मानवीकरण कर उन्हें एक नियम सम्मत, नीतिज्ञ सम्राट् के रुप में स्वीकारा गया है। सभी का आच्छादन करने की प्रवृत्ति अथवा वरण कर लेने की योग्यता से उनका नाम वरुण कहा गया है – 'वरुणोवृणोतीति'।

मनुष्य जीवन में पंच महाभूतों में जल का स्थान सर्वोच्च है। जल के अभाव में जीवन की कल्पना असम्भव सी प्रतीत होती है। मनुष्य ही नहीं अपितु सम्पूर्ण प्राणि जगत् को जल की अत्यधिक आवश्यकता होती है। वेदों में शुद्ध जल के महत्व व उससे प्राप्त लाभों का वर्णन यत्र–तत्र द्रष्टव्य है। यथा –

**इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः।**

**गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना।।**

अर्थात् भली प्रकार से रोग रहित तथा रोगनाशक इस जल को मैं लाता हूँ। शुद्ध जल का सेवन करने से मैं मृत्यु से बचा रहूँगा। अन्न, घृत, दुग्ध आदि सामग्री तथा अग्नि के सहित घरों में आकर भलीभाँति बैठता हूँ।

जल ही जीवन का आधार है। मनुष्य की अन्न आपूर्ति के लिये भी कृषि को जल पर ही निर्भर रहना पड़ता है। यह जल हमें वर्षा द्वारा प्राप्त होता है। वर्तमान में विलुप्त होते वनों से वर्षा के स्तर में अत्यधिक कमी आई है और यह जल संकट मनुष्य की दैनंदिन आवश्यकताओं को भी बाधित करता है।

शुद्ध जल को मनुष्य के प्राणों का रक्षक व दीर्घ आयु प्रदान करने वाला माना गया है। सम्पूर्ण भारत वर्ष की कृषि व्यवस्था वर्षा जल पर ही आश्रित है। भारत की अर्थव्यवस्था मे कृषि का महत्वपूर्ण योगदान है। एक अध्ययन में (बि.स्टे.26.6.09) कहा गया है कि ''कृषि क्षेत्र ने ही गाँवों में गरीबी रेखा से लोगों को बाहर निकालने में अहम् भूमिका का निर्वाह किया है। यह अध्ययन 4 राज्यों के 300 गाँवों में किया गया है, जिससे यह परिणाम प्राप्त हुआ है कि ऐसे व्यक्ति निर्धनता सीमा रेखा (गरीबी रेखा) से ऊपर आ गए हैं जो 2005 तक निर्धनता सीमा रेखा के नीचे थे और इस आर्थिक उन्नति के पीछे सर्वप्रमुख कारण कृषि क्षेत्र ही है।'' कृषि के लिये वर्षा के महत्व से ऋषि भलीभाँति परिचित थे। यजुर्वेद में यज्ञ द्वारा वर्षा व कृषि वृद्धि के उपाय द्रष्टव्य हैं। वेदों में अनेक स्थानों पर उल्लेख प्राप्त है कि यज्ञ द्वारा वर्षा को आमंत्रित किया जा सकता है।

**शुनासीरेह स्म मे जुषेथाम्।**
**यद्दिवि चक्रथुः पयस्ते नेमामुप सिञ्चतम्।।**[128]

अर्थात् वायु व सूर्य मेरे यज्ञ को स्वीकार करें और जो जल आकाश मण्डल में है, उसकी वृष्टि द्वारा पृथिवी को सिंचित करें।

यज्ञ द्वारा वृष्टि की वृद्धि होती है। यज्ञ में प्रदान की जाने वाली आहूति सूर्य को प्राप्त होती है और सूर्य पर्यन्त वायुमण्डल में यज्ञ के धुएँ द्वारा होने वाली रासायनिक प्रक्रिया वृष्टि की स्थितियाँ निर्मित करती हैं। वृष्टि द्वारा जल, अन्न, पर्यावरण सम्बन्धी अन्य समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

---

[128] अथर्व 3.17.7

अर्वाचीन युग में अल्प वर्षा से पीने योग्य पानी का अभाव शहरी हिस्सों में तथा कृषि कार्य हेतु सिंचाई जल का अभाव सर्वत्र व्याप्त है। मानसून पर निर्भर कृषि अर्थव्यवस्था में वृक्षारोपण, पर्यावरण संरक्षण तथा यज्ञ विधानों के माध्यम से सुधार लाया जा सकता है।

**तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ**
**आपो जनयथा च नः।।**[129]

अर्थात् हे जल तुम अन्न प्राप्ति के लिये उपयोगी हो। तुम पर जीवन तथा नाना प्रकार की औषधियाँ, वनस्पतियाँ एवम् अन्न आदि पदार्थ आश्रित हैं। हे जल! तुम औषधि–रुप हो।

जल के दिव्य गुणों की उपासना व वर्णन स्थान–स्थान पर पुनरावृत्ति के साथ किया गया है। जल प्रबन्धन की दृष्टि से यह अत्यन्त महत्वपूर्ण उपाय है। किसी प्राकृतिक तत्व की उपयोगिता तथा महत्व को मन्त्रदृष्टा ऋषियों ने अत्यधिक अध्ययन व तपोबल के पश्चात् प्राप्त किया एवम् वैदिक ऋचाओं के माध्यम से इसका प्रचार प्रसार किया गया।

आधुनिक युग में व्याप्त जल संकट वैदिक उपायों के क्रियान्वयन द्वारा दूर करने में सहायता प्राप्त की जा सकती है। जल के अभाव में सम्पूर्ण वैज्ञानिक व भौतिक उन्नति निरर्थक है। पृथ्वी पर शुद्ध जल की घटती मात्रा से मानव अपने अस्तित्व को बचाने में कभी सफल नहीं हो सकता। जल संकट के वर्तमान युग में न केवल इसका मितव्ययिता से उपयोग करने पर बल देने की आवश्यकता है अपितु इसके संरक्षण के उपायों का क्रियान्वयन भी आवश्यक है।

जल की उपयोगिता को निम्न उद्धरण द्वारा भली प्रकार समझा जा सकता है। यहाँ दिव्य चक्षु ऋषियों ने सम्पूर्ण चराचर जगत् के लिये जल के महत्व एवम् उपयोगिता को बताते हुए उसकी वंदना की है –

**अम्बयोयन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम्।**

---

[129] ऋग्वेद, 10.9.3

**पृञ्तीधुर्मना पयः।।1।।**
**अम्र्या उप सूर्य याभिर्वा सूर्यः सह।**
**तानो हिन्वन्त्वध्वरम्।।2।।**
**अपोदेवी रुप यत्त गावः पिवन्ति नः।**
**सिन्धुभ्य कार्ण हनि।।3।।**
**अपस्वन्त इमृगतप्सु भेषजनम् अपामुत**
**प्ररस्ति भिरवा भवथ।**

अर्थात् यज्ञ कर्ताओं, माताओं के समान जल सोमरस, होम द्रव्य, दूध, घृत आदि को अपने मार्ग से यज्ञ तक लेकर आते हैं।1। सूर्य जिस जल के साथ रहता है तथा सूर्य मण्डल स्थित वह जल हमारे यज्ञ को फल प्रदान करने की शक्ति प्रदान करे। मैं जल के अधिष्ठाता देव का आव्हान करता हूँ। जहाँ जल पूर्ण नदी, तालाबों में हमारी गायें जल पीती हैं।3।। जल अमृत और औषधियों से परिपूर्ण है। इसके इन दिव्य गुणों से हमारे घोड़े और गायें बलवान व शक्तिशाली बनें।

जल को औषधि रुप में भी स्वीकारा गया है क्योंकि मनुष्य का सौन्दर्य, कांति व कोमलता आदि मनुष्य शरीर में जल के स्तर पर भी निर्भर है। भोजन के पाचन के लिये भी जल अत्यन्त आवश्यक है।

**आपो भद्रा घृतमिदाप आसन्नग्नीषोमौ बिभ्रत्याप इत्ताः।**
**तीव्रो रसो मधुपृचामरंगम आ मा प्राणेन सह वर्चसा गमेत्।।**[130]

अर्थात् जल मंगलमय और घी के समान पुष्टिदाता है तथा वही मधुरता भरी जलधाराओं का स्तोत्र भी है। भोजन के पचाने में उपयोगी तीव्र रस है। प्राण व कान्ति, बल और पौरुष देने वाला, अमरता की ओर ले जाने वाला मूल तत्व है।

---

[130] अथर्व 3.13.5

अपो देवा मधुमतीरगृभ्णन्नूर्जस्वती

राजस्वश्चितानाः

याभिर्मित्रावरुणावभ्यषिञ्चन्या–भिरिन्द्रमनयन्नत्यारातीः।।

वृष्ण ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं

मे देहि स्वाहा वृष्ण उर्मिरसि

राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि

वृषसेनोऽसिराष्ट्रदा राष्ट्रं

मे देहि स्वाहा वृषसेनोऽसि

राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मे दे हि।।

अर्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे

दत्त स्वाहाऽर्थेत स्थ राष्ट्रदा

राष्ट्रमनुष्मै दत्तौजस्वती स्थ

राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वहौजस्वती

स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः

परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे

दत्तस्वाहापः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा

राष्ट्रमुष्मै दत्तापां पतिरसि राष्ट्रदा

राष्ट्रं मे देहि स्वाहापां पतिरसि

राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दह्यपां गर्भोऽसि

राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहापां

गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि।।

सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे

दत्तस्वाहा सूर्यत्वचर स्थ राष्ट्रदा

राष्ट्रममुष्मै दत्त सूर्यवर्चस स्थ

राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा
सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै
दत्त मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं
ममुष्मै दत्त व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा
राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा व्रजक्षित स्थ
राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त
वाशी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे
दत्त स्वाहा वाशा स्थ राष्ट्रदा
राष्ट्रममुष्मै दात शविष्ठा स्थ
राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त शक्करी
स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा
शक्करी स्थ राष्ट्रया राष्ट्रममुष्मै
दत्त जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं
मे दत्त स्वाहा जनभृत स्थ राष्ट्रदा
राष्ट्रममुष्मै दत्त विश्वभृत स्थ
राष्ट्रदा राष्ट्रं मे
दत्त स्वाहा विश्वभृत स्थ
राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तपः स्वराज
स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त  मधुमतीर्मधु
मतीभिः पृच्यन्तां महि क्षत्रं क्षत्रियाय
वन्वाना अनाधृष्टाः सीयत
सा हौ जसौ महि क्षत्रं क्षत्रियाय दधतीः।[131]

---

[131] शु. यजु. 10.1—4

जल के महत्व की विस्तृत विवेचना के रूप में शुक्ल यजुर्वेद के दशम मण्डल के उपर्युक्त मन्त्र तत्कालीन जल प्रबन्धन व्यवस्था को स्पष्टतः प्रकाशित करते हैं। मधुर, ऊर्जायुक्त, राजा को उत्पन्न करने वाले और चेतनाप्रद जलों का ग्रहण किया जाता था। विशिष्ट प्रकार का जल इतना शक्तिसम्पन्न था कि जिसके अभिसिञ्चन द्वारा इन्द्र भी अजेय बन गया था। लहरों का जल, गमनशील जल, समुद्र जल, जल भंवर का जल, स्थिर जल, वृष्टि जल, पोखर का जल, कूप जल, मधुरूप जल, उल्व्य जल, दुग्धजल, घृतरूप जल इत्यादि सोलह प्रकार के जलों को सम्मिश्रित कर राष्ट्र रक्षा की प्रार्थना की जाती थी। उपर्युक्त मन्त्र ऋषियों की सूक्ष्म चिन्तनशैली को भी परिभाषित करता है। जहाँ जल की महत्ता व विभिन्न प्रकार के जलों के विषय में गहन अध्ययन प्राप्त होता है।

अर्थात् जल ही समस्त मानव जाति एवम् प्राणि जगत् में प्राणों का संचार करने वाला महत्त्वपूर्ण पर्यावरणीय घटक है और हम सभी को संयुत रुप से जल संरक्षण व जल प्रबन्धन के उपाय करना होंगे।

## वृक्ष अथवा वन प्रबन्धन

वन्य क्षेत्र, वृक्ष अथवा वनस्पति जगत् का मानव जीवन से अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध है। दोनों ही अन्योन्याश्रित हैं। वृक्ष ही मानवजाति के मित्र हैं जो मनुष्य जीवन के लिये आवश्यक प्राणवायु (जिसे वैज्ञानिक भाषा में ऑक्सीजन कहा जाता है) प्रदान करते हैं। वनस्पति जगत् द्वारा ही अनेकों जीवन रक्षक औषधियाँ प्राप्त होती हैं। वृक्ष भूमि के कटाव को बाधित करते हैं तथा भूस्खलन प्रक्रिया से मानवजाति की रक्षा करते हैं। वनों द्वारा प्राणिजगत् के अनेक दुर्लभ प्राणियों का अस्तित्व वर्तमान में भी सुरक्षित है।

वेद विश्व वाङ्मय की अमूल्य निधि के रुप में आज भी स्थापित है। वैदिक कालीन प्रज्ञा चक्षु ऋषियों ने मनुष्य के न केवल आध्यात्मिक उन्नति के क्षेत्र में सूक्त रचना की अपितु दैनंदिन विषयों

को भी प्रकाशित किया। वेदों में वृक्ष व वनों के महत्व एवं उनके प्रबन्धन के विषय में अनेकानेक सूक्त प्राप्त हैं।

वैदिक वाङ्मय एवम् वैदिकोत्तर साहित्य यथा ब्राह्मण, आरण्यक, पुराण, उपनिषद् आदि समस्त साहित्य में वृक्षों को देवतुल्य स्थापित कर उनमें ईश्वर के निवास की कल्पना की गई है। वर्तमान भौतिकवादी विचारधारा से परे विचारों को विस्तृत किया जाकर यदि हम वृक्षों में ईश्वर का साक्षात्कार करें तो सम्भवतः वृक्षों की अंधाधुंध कटाई पर स्वतः ही रोक लगाई जा सकती है। मनुष्य उन्नति के नाम पर वनों के विनाश की ओर अग्रसर है किन्तु हमें वनों को संरक्षण देना आवश्यक होगा और इस सुकृत्य द्वारा हम वनों, पृथिवी अथवा सम्पूर्ण मानव जाति का ही नहीं सर्वप्रथम स्वयं का उज्ज्वल भविष्य सुनिश्चित करेंगे। प्रकृति का आदर व संरक्षण ही प्रकृति प्रकोप से रक्षण का एकमात्र उपाय है।

मूलतः वनस्पति जगत् का अध्ययन कर ही ऋषियों द्वारा वेद की एक नवीन शाखा आयुर्वेद का प्रणयन किया गया। सम्भवतः आयुर्वेद को उपवेद स्वीकारने के परोक्ष में यही प्रयोजन है। विभिन्न वनस्पतियाँ एवं उनके उपयोग व प्रयोग विधि आदि का वर्णन वेदों में प्राप्त हैं। सर्वप्रथम प्रबुद्ध ऋषि पृथ्वी की सेवा तथा संरक्षण करने का उपदेश देते हैं जो समस्त मानव जाति के भार को, समस्त प्राणि जगत को स्वयं पर वहन करती है।

**यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा**
**पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि।**[132]

अर्थात् जिस पर वनस्पति को उत्पन्न करने वाले वृक्ष ध्रुवता से स्थिर रहते हैं, ये वृक्ष औषधि आदि के रुप में सबके पास जाते हैं। वृक्षों को धारण करने वाली धर्म से धृता ऐसी सबका पोषण करने वाली पृथ्वी की हम अभिमुख होकर स्तुति करते हैं।

---

[132] अथर्ववेद संहिता,. 12.1.2.7 ले. पं. रामस्वरूप शर्मा, गौड़, प्र. चौखम्ना विद्याभवन, वाराणसी, पृ. 21

सम्प्रति सहस्त्रों वैज्ञानिक नित नए प्रयोग व खोज करने में जुटे हुए हैं। वैज्ञानिक आज जिन प्रयोगों के पश्चात् अवधारणाएँ प्रस्तुत कर रहे हैं, उनसे हमारे सर्वज्ञ मनीषी अनादिकाल से परिचित थे एवं उन्हें सत्यापित कर चुके थे। यथा वर्तमान वैज्ञानिकों के अनुसार वनस्पति जगत् भी अपने चहुँ ओर के वातावरण के प्रति अतिसंवेदनशील होते हैं। वे प्रत्येक पर्यावरणीय परिवर्तन के प्रति अपनी प्रतिक्रिया देते हैं। जीवन के प्रत्येक दुःख व सुख के प्रति जिस प्रकार मानव संवेदनशील होता है तथा अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करता है, यही सब भावनाएँ व क्रिया–प्रतिक्रिया वनस्पति जगत् में भी पाई जाती हैं।

वैदिक कालीन ऋषियों के वर्णनानुसार प्रारब्ध कर्म मनुष्यों के साथ–साथ पर्यावरणीय तत्वों को भी प्रभावित करते हैं। वृक्ष, लताएँ एवम् अन्य सभी प्रकार की वनस्पतियाँ अपने प्रारब्ध कर्मों से वशीभूत होकर ही इस जन्म में बीज रुपी अंधकार में सिमटी हुई रहती हैं। किन्तु ईश्वरीय आशीष के द्वारा ही उनमें प्राणों का संचार होता है तथा वे वृद्धि को प्राप्त कर फलदायी होती है –

**गुच्छगुल्मं तु विविधं तथैव तृणजातयः।**
**बीजकाण्डरुहाण्येव प्रताना वल्य एव च।।**
**तमसा बहुरुपेण वेष्टिताः कर्महेतुना।**
**अन्तस्संज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विता।।**[133]

प्रसिद्ध वैज्ञानिक एवं वैदिक साहित्य का गहन अध्ययन प्राप्त करने वाले डॉ. आर.व्ही.एस.एस. अवधनुलु के अनुवादानुसार –

"The creepers, plants, various forms of grass etc. or anything born from seed (in short all the species of the botanical world) are internally conscious (therefore alive) but (they are simultaneously) enveloped by darkness of this extreme misdeeds in the past for which they have to bear the fruits of joy and sorrow now.

---

[133] मनुस्मृति 1.48–49

Now scientists have proved under laboratory controlled conditios that the botanical world is as sensitive to the joys and sorrows of life as any human being."[134]

प्रकृति एवम् अपने चहुँ ओर के पर्यावरण के प्रति सजग ऋषि आश्रमों का जीवन व्यतीत करते थे। वेदज्ञ विद्वान पं. रामगोविन्द त्रिवेदीजी के अनुसार 'आश्रमों का निष्कपट जीवन बिताने वाले, प्रकृति के निविड़ नीड़ में विहरण करने वाले और वनानी देवी के अभय क्रोड़ में विचरण करने वाले आर्यों का स्वाभाविक प्रकृति–वर्णन कितना हृदयग्राही और कितना मनः प्राण–विमुग्धकारी है, यह अरण्यानी सूक्त के छह मन्त्रों में देखते ही बनता है। ऋग्वेद के 10वें मण्डल के 146वें सूक्त के देवता अरण्यानी और ऋषि देवमुनि हैं–[135]

**न वा अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति।**
**स्वादो फलस्य जग्ध्वाय यथाकामं नि पद्यते।।**[136]

अर्थात् अरण्यानी (वनदेवी) किसी को नहीं मारती। यदि बाघ, चोर आदि वहाँ न आवे तो कोई डर नहीं। वन में स्वादिष्ट फल खा–खा कर भलीभाँति कालक्षेप किया जा सकता है।

वनों के महत्व से परिचित ऋषि मुनियों ने सामान्य जन मानस को भी पर्यावरण संरक्षण के प्रति सजग किया।

वनस्पति जगत् से प्राप्त विभिन्न रोगोपचार में समर्थ औषधियों का वर्णन वैदिक वाङ्मय में प्राप्त होता है। अनेकों असाध्य रोगों के निवारण के उपायों के साथ–साथ विषधर जीवों के दंश से बचाव के लिये भी औषधियों का वर्णन है, परिवार नियोजन तथा अनेक वर्तमान काल की भयावह व्याधियों का उपाय भी वैदिक औषधि विज्ञान में प्राप्त होता है।

**यो गिरिष्वजायथा वीरुधां बलवत्तमः।**
**कृष्ठे ह तक्मनाशन तक्मानं नाशयन्नितः।।**

---

[134] Science & Technology in Vedas and Sastras byDr. RVSS Avdhavnutu[ 2007, Pub. Shri Veda Bharathi, Hyderabad. P 253

[135] वैदिक साहित्य पं. रामगोविन्द त्रिवेदी, वेदान्त शास्त्री (भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन वाराणसी) पृ.476

[136] ऋग्वेद 10.146.5

सुपर्ण सुवने गिरौ जातं हिमवर्तस्परि।
धनरभि श्रुत्वा यन्वि विदुर्हि तक्मनाशनम्।।
अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि।
तत्रामृतस्य पुष्पं देवाः कृष्ठमवन्वत।।
हिरण्ययाः पग्थान आसन्नरित्राणि हिरण्यया।
नावो हिरण्ययारासन् याभिः कृष्ठं निरावहन्।।
इमं मे कृष्ठ पुरूष तमा वह तं निष्कुरु।
तनु मे अगदं कृधि।।
देवेभ्यो अधि जातोऽसि सोमस्यासिसखा हितः।
स प्राणाय व्यानाय चक्षुषे मे अस्मं मृड।
उदङ् जातो हिमवतः स प्राच्यां नीयसे जनम्।।
तत्र कुष्ठस्य नामान्युत्तमानि वि भेजिरे।
उत्तमो नाम कुष्ठास्युत्तमो नाम ते पिता।
यक्ष्मं च सर्वं नाशाय तक्मानं चारसं कृधि।।
शीर्षामयमुपहत्त्यामक्ष्योस्तन्वोरपः।
कृष्ठतत् सर्वं निष्करद दैवं समह वृष्ण्यम्।।[137]

अर्थात् पर्वतों में उत्पन्न बलवान औषधिकूट! तू कठिन रोगों की नाशक है। हमारे कष्टकारक रोगों का नाश करती हुई तू यहाँ आ। गरुड़ का जो प्राकट्य स्थल है अर्थात् हिमालय में उत्पन्न इस औषधि के विषय में लोगों ने सुना और वहाँ धनों के साथ जाकर उसे प्राप्त किया। स्वर्ग की सुवर्णमय नौका द्वारा अमृत पुष्परूप कूट को देवताओं ने प्राप्त किया। हे कूट! तुम सोम के मित्र हो,

---

[137] अथर्व 5.3

इस पुरूष के प्राण–व्यान एवम् नेत्र को सुख दो। हिमालय के उत्तर में कूट उत्पन्न हुआ तथा असीम रोगनाशक शक्तियों से युक्त यह औषधि भौतिक शरीर में विद्यमान जीवात्मा और परमात्मा दोनों में रोग, राग, द्वेष, मोह आदि महारोगों को नष्ट करने का सामर्थ्य रखता है। राजयक्ष्मा, कुष्ठ रोग, शिर रोग, नेत्र व्याधि और रोगोत्पत्ति का निमित्त पाप इन सबको कूट ने देवबल प्राप्त कर नष्ट कर दिया। विभिन्न व्याधियों एवम् उनके उपचारों से वैदिककालीन ऋषि पूर्णतः परिचित थे।

वैदिक साहित्य में जल प्रदूषण, वनों के प्रबन्धन उपयोगिता के अतिरिक्त सर्वव्याप्त वायु, प्रकाश तथा पृथ्वी आदि के प्रबंधन के अनेक उपाय दृष्टव्य हैं। ध्वनि प्रदूषण, वायु प्रदूषण आदि से रोकथाम के उपाय भी प्राप्त हैं। पृथ्वी को प्रदूषण से बचाने के लिये ऋषियों ने पृथ्वी को मातृतुल्य स्वीकारने की सलाह दी है। यदि प्रत्येक मनुष्य अपनी धरती माँ के प्रति अपने पर्यावरण के प्रति अपने कर्तव्यों को जानेगा तभी वह उसे आदर देगा एवम् उसके संरक्षण के प्रति सचेत होगा।

वेदों में धरती तो माता तथा मेघ को पिता के रुप में भी वर्णित किया गया है। पृथ्वी पर व्याप्त बीजों को सुप्तावस्था से मेघ ही जागृत करता है। अर्थात् जल के अभाव में बीज का वृक्ष रुप में परिणित होना असंभव है–

**यस्मामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्चकृष्टयः।**
**भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे।।**[138]

भोजन व स्वास्थ्य देने वाली सभी वनस्पतियाँ इस भूमि पर ही उत्पन्न होती है। पृथ्वी समस्त वनस्पतियों की माता व मेघ पिता हैं, क्योंकि वर्षा के रुप में पानी बहाकर मेघ ही पृथ्वी में गर्भाधान करता है।

---

[138] अथर्व 12.1.42

पृथ्वी के आदर स्वरुप अनेक सूक्तों की रचना की गई है। इस सस्य श्यामला धरती को समस्त धनों को वैभव को प्रदान करने वाली बताया गया है। सभी प्रकार की निधियों को समाहित करने वाली प्रकृति को हिरण्यगर्भा की संज्ञा दी गई है –

**शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता।**
**तस्ये हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः।।**[139]

अर्थात् यह भूमि, पर्वत, चट्टान, मिट्टी से निर्मित है। मैं उसी हिरण्यगर्भा पृथ्वी के लिये स्वागत वचन बोलता हूँ। उसे नमन करता हूँ। ऐसी हिरण्यगर्भा पृथ्वी को मनुष्य अपनी लालसा के वशीभूत होकर शोषित कर रहा है। बड़ी–बड़ी फैक्ट्रियाँ, संयंत्र, बहुमंजिला इमारतों का जाल, वृक्षों की सघन कटाई, नई–नई वैज्ञानिक (मानवता विरोधी) खोजें, अत्यधिक भूगर्भीय संपदा का उत्खनन आदि सभी कारणों से पर्यावरण अत्यधिक प्रदूषित होता जा रहा है। संयंत्रों का दूषित जल नदियों में प्रवाहित करने से जल प्रदूषण के द्वारा भी मानव जीवन को एवम् जलचरों को भी अत्यधिक खतरा उत्पन्न हो रहा है।

डॉ. एस. कानन द्वारा सी.टि.ओ. फोरम मेग्जीन में अपने एक लेख "Wisdom of the ages" Corporate Social Responsibility की अवधारणा प्रदान की तथा समाज के उच्च व्यावसायिक वर्ग के समाज के प्रति उत्तरदायित्व की व्याख्या की।

हाल ही में 'बिजनेस स्टैन्डर्ड' नामक समाचार पत्र में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार रायपुर में सैकड़ों ग्रामीणों ने एकत्रित होकर एक अभियान आरंभ किया जिसके अनुसार प्रदूषण के विरोध में अपना मत रखने का ग्रामीणों ने एक नया उपाय खोजा। ग्रामीणों ने पैकेट में बंद कर

---

[139] अथर्व 12.1.28

कारखाने का अपशिष्ट पदार्थ उद्योगपतियों को सौंपा। यह करने के लिये उनका उद्देश्य उद्योगपतियों को संयंत्रों से प्रसारित होने वाले प्रदूषण का आभास कराना है।

वर्तमान में कई प्रमुख कंपनियाँ जो सम्पूर्ण विश्व में स्थापित हैं, उन्होंने अपनी प्रदूषण उत्पन्न करने संबंधी त्रुटियों को स्वीकार किया तथा प्रदूषण नियंत्रण के प्रति गंभीरता दर्शाती है और इसी सतर्कता ने व्यावसायिक उत्तरदायित्व की अवधारणा को प्रेरित किया है। वर्तमान में यह नई अवधारणा –

'**व्यावसायिक जगत् के सामाजिक उत्तरदायित्व**' के रूप में प्रकाश में आई है, जिसके अनुसार व्यावसायिक संगठन समाज के हितों को ध्यान में रखते हुए अपनी प्रक्रिया संबंधी समस्त क्रिया कलापों के अपने उपभोक्ताओं, कर्मचारियों, अंशधारकों, समाज व पर्यावरण पर होने वाले दुष्प्रभावों का उत्तरदायित्व वहन करने को तत्पर हों।

21 जुलाई 2006 को आयोजित ITC की 95 वार्षिक आम सभा में श्री वाइ.सी.देवेश्वर ने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में पर्यावरण संरक्षण के प्रति अपने उत्तरदायित्व को स्वीकारा – ''कंपनी के व्यवसायों ने अपने वित्तीय मूल्य निर्माण योग्यता को मजबूत करने के लिये योगदान किया है। वैसे ही उसका प्रभाव बढ़ती हुई आर्थिक, सामाजिक एवम् पर्यावरण पूँजी पर भी महत्वपूर्ण है।''

पर्यावरण संरक्षण के सन्दर्भ में विश्वविख्यात भारतीय कम्पनी **टाटा स्टील** का प्रयास भी उल्लेखनीय है। उद्योगों के मध्य प्रतियोगिता के इस युग में जहाँ उद्यमी अपने उत्पादों के प्रचार–प्रसार हेतु हरसम्भव प्रयास कर रहे हैं, वहीं टाटा स्टील ने धामरा पोर्ट लिमिटेड के साथ संयुक्त रूप से ''ऑलिव रिडली टर्टल'' (कछुए की विशेष प्रजाति जो भारत, प्रशांत और अटलांटिक महासागर में पाई जाती है) की सुरक्षा को केन्द्र में रखकर एक व्यावसायिक फिल्म 'हेलो जिन्दगी' का निर्माण किया (स्वरूप चक्रवर्ती और ईशिता आयान दत्त)

इसके अतिरिक्त कई बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने भी पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में अपने योगदान का अंश निर्धारण किया है और इसी प्रकार यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने उत्तरदायित्व के प्रति सजग होगा तो पर्यावरण प्रदूषण रुपी भयावह राक्षस से मुक्ति पाना संभव हो सकेगा। वर्तमान में विश्व के समस्त वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ, समाजविद्, अर्थशास्त्री आदि सभी पर्यावरण के क्षेत्र में रोजगार में वृद्धि के उपाय खोजने के लिये तत्पर है। उनके अनुसार पर्यावरणीय विकल्पों के साथ हरित रोजगार रुपी नवीन अवधारणा का उदय होगा। जैव ईंधन के रुप में रासायनिक ईंधन तथा पर्यावरण के शोषण से निवारण के उपाय ढूंढे जा रहे हैं। प्रकृति, प्राकृतिक संपदा तथा पर्यावरण सभी के संरक्षण के उद्देश्य से सुप्रबंधित रुप से प्रकृति के स्त्रोतों के उचित उपयोग की ओर भी प्रयास किया जायेगा यथा – सूर्य प्रकाश, जल, वायु, मिट्टी, वनस्पति आदि द्वारा संचित उर्जा द्वारा ईंधन का विकल्प तैयार किया जायेगा। अधिक वृक्षारोपण द्वारा हानिकारक गैस कार्बनडाईऑक्साइड को शोषित कर प्राणवायु (ऑक्सीजन) की मात्रा का विस्तार किया जाना चाहिये।

हरित वैज्ञानिक ऐसी तकनीक विकसित करने का कार्यक्रम बना रहे हैं जो प्राकृतिक संसाधनों पर ही नहीं प्रकृति की नकल पर भी आधारित है। इस विज्ञान की बॉयोमिमिक्री के रुप में स्थापित किया जा रहा है। इस विज्ञान के द्वारा पर्यावरण को क्षति पहुँचाए बिना उर्जा का उत्सर्जन किया जा सकता है। पर्यावरण के अंधाधुंध दोहन के पश्चात् विश्व स्वयं ही विनाश की स्थिति को प्राप्त कर रहा है। हरित क्रांति नवीन अवधारणा राष्ट्र के अर्थशास्त्र को भी अपनी ओर आकृष्ट करेगी। पर्यावरण–मित्र तकनीकों, उपकरणों व पर्यावरण संरक्षण को केन्द्र में रखकर तैयार की गई योजनाओं का लाभ देश की युवा पीढ़ी को अवश्य प्राप्त होगा। निर्मला भुराड़िया (प्रसिद्ध समाजशास्त्री व पर्यावरण चिंतक)

मानव समाज को स्वयं की प्रकृति–प्रदत्त संसाधनों का उपयोग करने का एकमात्र अधिकारी नहीं मान लेना चाहिये क्योंकि प्राकृतिक संसाधन तो पृथ्वी पर उत्पन्न प्राणिमात्र के जीवन यापन के

लिये समान रुप से ईश्वर द्वारा प्रदत्त संसाधन हैं और हम यदि ईश्वर द्वारा पोषित व पृथ्वी द्वारा घारित समस्त जीवधारियों से तुलना करें तो हमारी उपस्थिति अत्यन्त अल्प संख्या में प्रतीत होती है। यदि हम प्राकृतिक संसाधनों एवं पर्यावरण का सम्यक् प्रबन्धन कर सकें तो पृथ्वी पर पर्यावरण संतुलन पुनः स्थापित किया जा सकता है। किन्तु यदि पर्यावरण संरक्षण की अनदेखी की गई तो प्रकृति अपने विध्वंसकारी रुप द्वारा संतुलन स्थापित करने का प्रयास करती है। पर्यावरण प्रबन्धन वर्तमान विश्व की सबसे वृहत् समस्या है जिसका समाधान सर्वप्रथम आवश्यक है। पर्यावरण प्रबन्धन के द्वारा ही हम अपनी आने वाली पीढ़ी की उन्नति की कामना कर सकते हैं तथा उनका भविष्य एवम् वर्तमान में अपने अस्त्तिव के लिये संघर्षरत अनेकों प्रजातियों का संरक्षण कर सकते हैं।

वैदिक कालीन मन्त्रदृष्टा प्रबुद्धऋषि पर्यावरण के प्रति तो सचेत थे ही धरती के कोप से भी भलीभाँति परिचित थे। यही कारण है कि पृथ्वी की निस्वार्थ भूगर्भीय दानशीलता का उन्होंने सम्मान किया, उसकी भूगर्भीय संपदा, वनस्पति जगत् से लाभ आदि से वे पूरी तरह परिचित थे। सूर्य, वायु, वनस्पति, जल, अन्न आदि सभी प्राकृतिक तत्वों को देवत्व रुप में स्थापित कर उनकी वंदना की गई।

वैदिक वाङ्मय में पृथ्वी विभिन्न अभिधानों से सुशोभित तथा संस्तुत है। यथा – अचला, स्थिरा, ध्रुवा, हिरण्यगर्भा। पृथ्वी को अग्निगर्भा भी कहा गया है –

**माता पुत्रं सग्नि विभर्तुगर्भ आः।**[140]

तत्कालीन वैदिक ऋषियों को पृथ्वी के गर्भ में होने वाली रासायनिक क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं एवम् उनसे हो सकने वाली हानि का भी ज्ञान था। जब पृथ्वी अपने शरीर पर हो रहे अत्याचार से क्षुभित हो जाती है तब धुँआ, गैसें, धूल, जल, लावा आदि उत्सर्जित करना प्रारंभ कर देती है।

---

[140] यजु. 7.11.57

आधुनिक वैज्ञानिक ज्वालामुखी के फटने के लिये भूगर्भीय संतुलन दबाव एवं ताप वृद्धि का यही कारण मानते हैं। पृथ्वी पर होने वाले भूस्खलन, ज्वारभाटा, सुनामी आदि प्राकृतिक आपदाओं के लिये पर्यावरण प्रदूषण द्वारा पृथ्वी को दिया गया असंतुलन ही प्रमुख कारण है। अथर्ववेद का पृथ्वीसूक्त मानवीय–दैवीय–राष्ट्रीय सहित समस्त पर्यावरण शुद्धि तथा पृथ्वीप्रसाद से प्राप्त समस्त जीवनोपयोगी पदार्थोंका विवरण देते हुए ऋषि की अनुग्रह बुद्धि हमें वरदान के रूप में उपलब्ध है–जहाँ अधुनातन पर्यावरण प्रबन्धन के अशेष बिन्दु सन्निहित हैं। इस परिप्रेक्ष्य में यहाँ अविकल पृथ्वीसूक्त विषय के अनुरोध के कारण लिखित है–

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवी धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु।।1।।
असंबाधं बध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु।
नानावीर्या औषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः।।2।।
यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु।।3।।
यस्याश्चतस्त्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।
या विभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु।।4।।
यस्या पूर्व पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन्।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु।।5।।
विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु।।6।।
यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम्।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा।।7।।
यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः।
यस्या हृदयं परमे व्यो मन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः।

सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ।।8।।

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति।

सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा ।।9।।

यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे।

इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः।।

सा नो भूमिर्वि सृजता माता पुत्राय मे पयः।।10।।

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु।

बभ्रुं कृष्णां रोहिणी विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम्।

अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम्।।11।।

यत् ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः।

तासु नो धेह्याभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।।

पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ।।12।।

यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः।

यस्यां मीयन्ते खस्वः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात्

सा नो भूमिर्वर्धयद् वर्धमाना।।13।।

यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्याद् योऽभिदासान्मनसा यो वधेन।

तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः।

तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं

मर्त्येभ्य उ़द्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति।।15।।

ता नः प्रजाः सं दुहतां समग्रा वाचो मधु

पृथिवि धेहि मह्यम् ।।16।।

विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम्।

शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा। ।।17।।

महत्सधस्थं महती बभूविथ महान्वेग
एजथुर्वेपथुष्टे महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम्।
सा नो भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव
संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन।।18।।
अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु।
अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः।।19।।
अग्निर्दिवआ तपत्यग्नेर्देवस्योर्व१न्तरिक्षम्।
अग्निं मर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम्।।20।।
अग्निवासाः पृथिव्य सितज्ञूस्त्विषीमन्तं संशितं मा कृणोतु।।21।।
भूम्यां देवभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतम्।
भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः
सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु।।22।।
यस्ते गन्धः पृथिवि संबभूव यं बिभ्रत्योषधयो यमापः।
यं गन्धर्वा अप्सरसश्च भेजिरे तेन मा
सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन।।23।।
यस्ते गन्धः पुष्करमाविवेश यं संजभ्रुः सूर्याया विवाहे।
अमर्त्याः पृथिवि गन्धमग्रे तेन मा
सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन।।24।।
यस्ते गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचिः
यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगषूत हस्तिषु।
कन्या यां वर्चो यद् भूमे तेनास्माँ
अपि सं सृज मा नो द्विक्षत कश्चन।।25।।
शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संघृता घृता
तस्यै हिरण्यवक्षसें पृथिव्या अकरं नमः

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा।
पृथिवी विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि।।27।।
उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः।
पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम्।।28।।
विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि क्षमां भृमिं ब्रह्मणा वावृधानाम्।
ऊर्जे पुष्टं ब्रिभतीमन्नभागं घृतं त्वाभि नि षीदेम भूमे।।29।।
शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो नः सेदूरप्रिये तं नि दध्मः।
पवित्रेण पृथिवि भोत् पुनामि।। 30।।
यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद् याश्च पश्चात्।
स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा नि पप्तं भुवने शिश्रियाणः।।31।।
मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत।
स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन
परिपन्थिनो वरीयो यावया वधम्।।32।।
यावत् तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना।
तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम्।।33।।
यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्श्वम्।
उत्तानास्त्वा प्रतीचीं यत् पुष्टीभिरधिशेमहे।
मा हिंसीस्तत्र नो भूपे सर्वस्य प्रतिशीवरि।।34।।
यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम्।। 35।।
ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः।
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम्।।36।।
याप सर्पं विजमाना विमृग्वरी यस्यामासन्नग्रवो ये अप्स्व१न्तः।
परा दम्यून् ददती देवपीयूनिन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम्।

शक्राय दध्रं वृषभाय वृष्णे ।।37।।
यस्यां सदोहविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते।
ब्रह्माणो यस्यार्मचन्त्यृग्मिः साम्ना यजुविंदः।
युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोमनिन्द्राय पातवे।।38।।
यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदनृचुः।
सप्त सत्रेण वेधमो यज्ञेन तपसा सह।।39।।
सा नो भूमिरा दिशतु यद्धनं कामयामहे।
भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरोगवः।।40।।
यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः।।
सा नो भूमिः प्र णुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु।।41।।
यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः।
भूम्यै पर्जन्यपत्नयै नमोऽस्तु वर्पमेदसे।।42।।
यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते।
प्रजापतिः पृथिवी विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां नः कृणोतु।।43।।
निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे।
वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना।।44।।
जनं विभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।
सहस्त्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती।।45।।
यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा हेमन्तजब्धो भृमलो गुहा शये।
क्रिमिर्जिन्वत् पृथिवि यद्यदेजति प्रावृविं तन्नः
सर्पन्मोप सृपद्यच्छिवं तेन नो मृड।।46।।
ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे।
यैः सचरन्त्यभये भद्रपापास्तं पन्थानं जयमानमित्रमतस्करं

यच्छिवं तेन नो मृड ।।47।।
मल्वं बिभ्रती गुरुभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः
वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय।।48।।
ये त आरण्याः पशवो मृगा वने
हिताः सिंहा व्याघ्राः पुरुषादुश्चिरन्ति।
उलं वृकं पृथिवि दुच्छुनामित
ऋक्षीकां रक्षो अप बाधयास्मत्।।49।।
यद वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा।
त्विपीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोधतः।।58।।
शन्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती।
भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह।।59।।
यामन्वैच्छद्धविपा विश्वकर्मान्तरर्णये रजसि प्रविष्टाम्
भुजिष्यं१ पात्रं निहितं गुहा यदाविभोगे अभवन्मातृमद्भ्यः।।60।।
त्वमम्यावपनी जनानामदितिः कामदुधा पप्रथाना।
यत् तं ऊनं तत् त आ पूरयाति
प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य।।61।।
उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम।।62।।
भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम्।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम्।।63।।[141]

उपयुक्त सन्दर्भित पृथिवी सूक्त की महत्ता के विविध आयाम प्रकाशित करते हुए पं. सातवलेकर का चिन्तन यहाँ प्रस्तुत है–

---

[141] अथर्व 12.1–63

वे कहते हैं कि मातृभूमि! सर्वगुण सम्पन्न चयनित राजा तेरा संरक्षण करते है तथा तू भी अपने आधार से भूत, वर्तमान व भविष्य तीनों कालों के सम्पूर्ण पदार्थों का उत्तम प्रकार से पोषण करने में समर्थ है। हम अहर्निश तेरा संरक्षण करते हैं, तू भी हमारी कीर्ति में वृद्धि का प्रयास कर। यहाँ मनुष्य व प्रकृति का अन्योन्याश्रित होना तथा एक दूसरे का संरक्षक होना यह भाव स्पष्ट प्रतिबिम्बित होता है। हमारी मातृभूमि जहाँ उत्तम प्रकार की पुष्टिकारक, रोग नाशक अनेक औषधियाँ व विभिन्न वनस्पतियाँ उत्पन्न होती है, वह हमारी प्रिय मातृभूमि हमारी कीर्ति व यश को चहुँदिश विस्तीर्ण करने के लिए कारणीभूत हो।

पर्यावरण के महत्त्व व प्रबन्धन के विषय में वे कहते हैं कि वेदों के अनुसार हमारी जिस मातृभूमि में सागर, महासागर, नदियाँ, तालाब, कुएँ, बावड़ी, नहर, झीलें इत्यादि खेती को पानी मिलने के विशाल साधन हैं, जिस भूमि में भिन्न प्रकार के विपुल अन्न प्रसाद स्वरूप प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार सब प्राणी सुखी है जहाँ अनेक विध कलाओं में प्रवीण कुशल कारीगर हैं, सभी अपने–अपने उद्यमों में रत है, जहाँ परिश्रमी लोग होते हैं, जहाँ चारों दिशाओं में सर्वत्र उत्तम धनधान्य उत्पन्न होता है, जिस पृथ्वी पर सम्पूर्ण पशु–पक्षी जगत् वनस्पतियाँ व अन्य जीवधारियों का उत्तम प्रकार से पोषण व संरक्षण होता है, वह हमारी मातृभूमि जहाँ हमारे पूर्वजों ने अपने ज्ञान द्वारा, क्षत्रियों ने अपनी वीरता द्वारा, वैश्यों ने अपनी कुशलता द्वारा महान् पराक्रम किये जो सुन्दर भूमि सब पशु–पक्षियों को भी उत्तम निवास स्थान देती है, ऐसी हमारी मातृभूमि वसुन्धरा हमारा ज्ञान, विज्ञान, शौर्य, तेज वीर्य व ऐश्वर्य पूर्ण रूप से बढ़ाने वाली हो।

पृथ्वी जो सबका पोषण करने वाली है, रत्नों को धारण करने वाली है, सभी पदार्थों एवम् प्राणियों को आश्रय देने वाली है, ऐसी हमारी मातृभूमि के रक्षण में चतुर, उद्यमी, परोपकारी, विद्वान, शूर व धनिक लोग, निन्द्रा, तन्द्रा, आलस्य एवम् अज्ञानादि दोषों से रहित हो, तत्पर रहते हैं। धरती पर मेघों का जल सर्वत्र समान रूप से प्राप्त होता है उसी प्रकार पृथ्वी पर परोपकारी सन्त

उपदेशामृत रूपी जल की वर्षा सदैव करते हैं, जिस प्रकार माता स्वार्थरहित हो बालक को अपना दूध पिलाती है उसी प्रकार धरती माँ भी हमें अपना सर्वस्व प्रदान करती है।

पृथ्वी के भौगोलिक सौन्दर्य का आनन्द लेते हुए ऋषि कहते हैं कि हे धरती माँ! तुझ पर जो हिमाच्छादित पहाड़, पर्वत, छोटे बड़े जंगल, नदियाँ इत्यादि है सभी का पोषण करने वाली तुम सदैव वृक्षादि से युक्त हो स्थिर रहो। हे मातृभूमि! तेरे भीतर व ऊपर जो पदार्थ है उन सबकी व तेरी शत्रुओं से रक्षा करने के लिए विद्वान, बलवान व धनवान लोग एकत्र हो यत्न करते हैं। यहाँ पृथ्वी के प्रति सम्मान भाव उसकी सम्पदा के प्रति आस्था व एकजुट होकर उस धरती माँ की रक्षा का प्रयास तत्कालीन उत्कृष्ट चिन्तन को प्रतिपादित करता है।

मातृभूमि को धन्यवाद प्रेषित करते हुए ऋृषि कहते हैं कि तू ही हमारा आधार है, हम तुझसे ही उत्पन्न हुए हैं, तू ही सम्पूर्ण पशु, पक्षी, मनुष्य व अन्य सम्पूर्ण प्राणी जगत का आधार है, तू ही सबका पोषण करती है, सभी को एकात्म भाव से रहने का स्थान देती हो।

हे मातृभूमे! तुम सुगन्धयुक्त हो। प्रत्येक वनस्पति व औषधियों में तुम्हारी सुगन्ध परिव्याप्त है, सूर्य तथा वायु जिस सुगन्ध को उद्दीप्त व प्रसारित करते हैं ऐसी ही सुरभि से हमें भी सुवासित करो, जिससे हमारे मध्य कोई वैरभाव न रहे, परस्पर स्नेह में वृद्धि हो जो समाज के लिए हितकारी हो, हम किसी दुःख का कारण न बने, योग्यता बनी रहे हम सुख व शान्ति से रहें, हमारा अधःपतन कभी न हो।

जिस प्रकार हमारी मातृभूमि हमें शान्ति, सुख, अन्न, जल आदि प्रदान करने वाली है। सभी इच्छित पदार्थों को हमें सहर्ष प्रदान करती है। अर्थात उपयोग की समस्त वस्तुएँ हमें सहज ही प्राप्त हो जाती है। अतः यह हमारा परम कर्त्तव्य है कि हम मातृभूमि के प्रति सम्पूर्ण प्रकृति व पर्यावरण के प्रति अपना कर्त्तव्य जान कर उसकी सेवा व रक्षा का संकल्प लें।

* * *